सूचीपत्र ।

अध्याय ।	पृष्ठसंख्या ।

ॐ नमः सिद्धेभ्यः ।

ओंनमोऽनेकान्तवादिने जिनाय ।

*पीठिका ।

मंगलाचरण—षट्पद ।

सिद्धिसदन बुधिवदन, मदनमदकदन दहन रज ।
लब्धि लसन्त अनन्त, चारु गुनवंत संत अज ॥
दुविधि धरमविधि कथन, अविधि-तम-मथन-दिवाकर ।
विघ्न निघ्नकरतार, सकल-सुख-उदय-सुधाधर ॥
शतइन्द्रवृन्द पदवंद भव, दन्द फन्द निःकन्द कर ।
अरिशोष मोष-मग-पोष निर-दोष जयति जिनराज वर ॥ १ ॥

दोहा ।

सिद्धशिरोमनि सिद्धिप्रद, शुद्धचिदातम भूप ।
ज्ञानानंदसुभावमय, वंदन करहुं अनूप ॥ २ ॥
नमों देव अरहंतको, सहित अनंत चतुष्ट ।
दोपरहित जो मोषमग, भाषि करत सुख पुष्ट ॥ ३ ॥
आचारज उवझाय मुनि, तीनों सुगुरु मनाय ।
शिवमग साधत जतनजुत, वदों मनवचकाय ॥ ४ ॥

---

* अथ श्रीप्रवचनसारपरमागम अध्यात्मविद्या श्रीमत्कुन्दकुन्दाचार्यकृत मूलप्राकृतगाथा ताकी संस्कृतटीका श्रीअमृतचन्द्रआचार्य करी ताकी देशभाषावचनिका पांडे हेमराजजीने रची है । ताहीके अनुसारसों वृन्दावन छन्द लिखै है । (प्रथमप्रति)

सीमंधरको आदि जे, तीर्थंकर जिन वीस ।
अब विदेहमें है तिन्है, नमों समवसृतईश ॥ ५ ॥
वानी खिरत त्रिकाल जसु, सुनहिं सकल चहुँसंग ।
केई मुनिव्रत अनुव्रत, धारहिं पुलकितअग ॥ ६ ॥
केई सहज सुभावमें, लीन होय मुनिवृंद ।
तीनों जोग निरोधिके, पावै सहजानंद ॥ ७ ॥
वृषभादिक चौवीस जे, वर्तमान तीर्थेश ।
तिनको बंदत वृंद अब, मेटो कुमति कलेश ॥ ८ ॥
वृषभसेनको आदि जे, अंतम गौतमस्वामि ।
चौदहसै त्रेपन सुगुरु, गणधरदेव नमामि ॥ ९ ॥
अनेकान्तवानी नमों, वर्जित सकलविरोध ।
वस्तु जथारथ सिद्धि कर, डारत मनमल शोध ॥ १० ॥
जोई केवलज्ञान है, स्यादवाद है सोय ।
भेद प्रतच्छ परोच्छको, वरतत है भ्रम खोय ॥ ११ ॥
वस्तु अनंत धरममयी, स्यादवादके रूप ।
सो इकंत सों सधत नहिं, यों भाषी जिनभूप ॥ १२ ॥
जेते धरम तिते पृथक, गहें अपेच्छा सिद्ध ।
रहितअपेच्छा सधत नहिं, होत विरुद्ध असिद्ध ॥ १३ ॥
सहितअपेच्छा जो वचन, सो सब वस्तुस्वरूप ।
रहित अपेच्छा जो वचन, सो सब भ्रमतमकूप ॥ १४ ॥
अनेकांत एकांतकी, इतनी है पहिचान ।
एक पच्छ एकांत मत, अनेकांत सब थान ॥ १५ ॥

अनेकांतमतकी यहां, वरतै नहिं एकांत ।
अनेकात हू है यहां, अनेकांत निरभ्रांत ॥ १६ ॥
सम्यग्ज्ञान प्रमान है, नय है ताके अंग ।
साधनसाध्यदशाविषैं, इनकी उठत तरंग ॥ १७ ॥
वस्तुरूप साधनविषैं, करत प्रमान प्रवेश ।
नयके द्वारन वरनियत , ताके सकल विशेश ॥ १८ ॥
लच्छविषैं जो वसत नित, लच्छन ताको नाम ।
जाके द्वार विलोकिये, लच्छ अवाध ललाम ॥ १९ ॥
इत्यादिक जे न्याय मग, नयनिच्छेपविधान ।
जिनवानीसों मिलत सब, सुपरभेदविज्ञान ॥ २० ॥
तातें जिनवानी नमों, अभिमतफलदातार ।
मो मनमदिरमें सदा, करो प्रकाश उदार ॥ २१ ॥

द्रुमिलावृत्त । (आठ सगण)

सब वस्तु अनत गुनातमको, जु यथारथरूप सुसिद्ध करै ।
परमान नयौर[1] निछेपदशा करि, मोहमहाभ्रमभाव हरै ॥
जसु आदि सु अत विरोध नहीं, नित लच्छन स्यादसुवाद धरै ।
वह श्रीजिनशासनको भवि वृंद, अराधत प्रीति प्रतीति भरै॥२२॥

दोहा ।

पुनि प्रनमों परब्रह्ममय, पच परमगुरु रूप ।
जासु ध्यानतें पाइये, सहजसुखामृतकूप ॥ २३ ॥

---

१ नय और ।

आदि अकार हकार सिर, रेफनाद जुतविंदु ।
सिद्धवीज जपि सिद्धिप्रद, पूरन शारदइंदु ॥ २४ ॥
मैाया वीज नमों सहित, पंचवरन अभिराम ।
मध्य वीज अरहंत जसु, स्वधासुधारसधाम ॥ २५ ॥
निजघट-छीरसमुद्रमधि, मनअंवुज निरमाप ।
वर्ग पत्र प्रति मध्य तसु, श्रीअरहंत सुथाप ॥ २६ ॥
स्वासोस्वास निरोधिके, पूरनचंद्र समान, ।
करो ध्यान भवि वृंद जहँ, झरत सुधा अमलान ॥ २७ ॥
पुनि वाचक इहि वरनको, शुद्धब्रह्म अरहंत ।
सहित अनंत चतुष्ट तिहिँ, ध्यावो थिरचित संत ॥ २८ ॥
इमि दृढ़तर अभ्यास करि, पुनि तिहि सम निजरूप ।
ध्यावो एकाकार थिर, तवहिँ होहु शिवभूप ॥ २९ ॥
ये ही मंगलमूल जग, सर्वोत्तम है येह ।
इनकी शरनागत रहो, उर धरि परम सनेह ॥ ३० ॥

सत्यार्थ मोक्षमार्गप्रवृत्तिका कथन ।

श्रीमत वीर जिनिंद जव, कीन्हों शिवपुर गौन ।
तव इत वासठ वरस लगि, खुल्यो रह्यो शिवभौन ॥ ३१ ॥
गौतमस्वामी शिव गये, फेरि सुधर्म्मास्वाम ।
पुनि जम्बूस्वामी लही, मुक्तिधाम अभिराम ॥ ३२ ॥

---

१ अर्हँ । २ ह्रीं ।

ऐसे पंचमकालमें, बासठ वरस प्रमान ।
रह्यो केवलज्ञान इत, भ्रमतम-भंजन-भान ॥ ३३ ॥
ता पीछें श्रुतकेवली, भये पंच परधान ।
वरष एक शतके विषें, पूरन ज्ञाननिधान ॥ ३४ ॥
तिस पीछेसों एकसौ, त्र्यासी वरषमझार ।
ग्यारअंग दशपूर्वधर, भये ग्यार अनगार ॥ ३५ ॥
वरष दोयसौ वीसमें, तिन पीछे मुनि पंच ।
भये इकादश अगके, पाठी समकित संच ॥ ३६ ॥
तिस पीछेसों एकसौ, ठारै वरष मझार ।
चार भये अनगार वर, एक अंगके धार ॥ ३७ ॥

श्रीजैनसिद्धान्तोंकी रचनासम्बन्धी कथन ।

कवित्तछन्द (३१ मात्रा)

भद्रबाहु अंतिम श्रुतकेवलि, जब लग रहे यहा परधान ।
तब लग द्वादशांगशासनको, रह्यो प्ररूपन पूरनज्ञान ॥
तहँ निश्चय व्यवहाररूप जो, शिवमारगका सुखद विधान ।
सो परिवर्तत रह्यो जथारथ, यों भवि वृंद करो श्रद्धान ॥३८॥
तिस पीछे इत कालदोपतें, अगज्ञानकी भई विछित्ति ।
तब कितेक मुनि शिथिलाचारी, भये किई तिन पृथक् प्रवृत्ति ॥
तिनसों श्वेताम्बर मत प्रगट्यो. रचे सूत्र विपरीत अहित्त ।
सो अब ताई प्रगट देखियत, यह विरोधमारगकी रित्त ॥ ३९॥

दोहा ।

अब वरनों जिहि भाँति इह, रह्यो जथारथपंथ ।
श्रीजिनसूत्र प्रमाण करि, सुखददशा निरग्रंथ ॥ ४० ॥

चोपाई ।

जे जिनसूत्र सीख उर धारी । रहे आचरन करत उदारी ॥
तिनकी रही जथारथ चरिया । तथा प्ररूपन श्रुतअनुसरिया ४१
तेई परम दिगंबर जानो । साँचे ग्रंथ पंथ ठहरानो ॥
वर्द्धमान शिवथान लहीते । छसौ तिरासी वरष वितीते ४२
दूजे भद्रबाहु आचारज । प्रगटे तिहि मगमें गुनआरज ॥
तिनकी परिपाटीमें भाई । किते वरष पीछे मुनिराई ॥ ४३ ॥
जिनसिद्धान्तनकी परिवृत्ती । करी जाहि विधि सुनो सुवृत्ती ॥
जयशशिरचित वचनिका पावन । समयसारतें लिखों सुहावन ४४

दोहा ।

एक भये धरसेन गुरु, तिनको सुनो बखान ।
जैसो ज्ञान रह्यो तिन्हें, श्रुतपथतें परमान ॥ ४५ ॥

करखाछन्द (मात्रा ३७)

अग्रणीपूर्वके, पाँचवें वस्तुका,
महाकरमप्रकृति, नाम चौथा ।
इस पराभृत्तका, ज्ञानतिनको रहा,
यहां लग अंगका, अंश तौ था ॥

---

१ प. जयचद्रजीकृत समयसारकी भाषाटीका ।

सो पराभृत्तको भूतवलि पुंष्परद[1],
दोयमुनिको सुगुरुने पढाया ।
तास अनुसार, षटखंडके सूत्रको
बांधिके पुस्तकोंमें मढ़ाया ॥ ४६ ॥
फिर तिसी सूत्रको, और मुनिवृन्द पढि,
रची विस्तारसों तासु टीका ।
धवल महाधवल जयधवल आदिक सु-
सिद्धान्तवृत्तान्तपरमान ठीका ॥
तिन हि सिद्धांतको, नेमिचंद्रादि-
आचार्य, अभ्यास करिके पुनीता ।
रचे गोमट्टसारादि वहु शास्त्र यह
प्रथमसिद्धांत-उतपत्ति-गीता ॥ ४७ ॥

दोहा ।

जीव करम संजोगसे, जो संसृति परजाय ।
तासु सुगुरु विस्तार करि, इहां रूप दरसाय ॥ ४८ ॥
गुनथानक अरु मार्गना, वरनन कीन्ह दयाल ।
भविजनके उद्धारको, यह मग सुखद विशाल ॥४९॥

कवित्त छन्द । (३१ मात्रा)

पर्यायार्थिक नय प्रधान कर, यहां कथन कीन्हों गुरुदेव ।
याहीको अशुद्धद्रव्यार्थिक, नय कहियत है यों लखि लेव ॥

---

१ पुष्पदन्त ।

तथा अध्यातमीक भाषा करि, यह अशुद्ध निहचै नय भेव ।
तथा याहि विवहारहु कहिये, यह सब अनेकांतकी टेव ॥५०॥

द्वितीयसिद्धान्तोत्पत्ति । कवित्तछन्द ।

बहुरि एक गुणधर नामा मुनि, भये तिसी पथमें परधान ।
तिनको ज्ञानप्रवादपूर्वका, दशम वस्तुका त्रितिय विधान ॥
तिस प्राभृतका ज्ञान रहा तब, तिनसों नागहस्ति मुनि जान ।
तिन दोउनतें यतिनायक मुनि, तिस प्राभृतको पढ़ा निदान ५१
तब यतिनायक सुगुरु कृपाकर, तिसही प्राभृतके अनुसार ।
सूत्र चूर्णिकारूप रचा सो, छह हजारका शास्त्र उदार ॥
ताकी टीका समुद्धरन गुरु, रची सु वारह सहस विचार ।
यों आचारज परंपरातें, कुंदकुंद मुनि ताहि निहार ॥५२॥

दोहा ।

इस सिद्धान्तरहस्यके, कुंदकुंद गुरुदेव ।
रसिक भये ज्ञाताभये, नमों तिन्हें वसुभेव ॥ ५३ ॥
यो दुतीय सिद्धांतकी, है उतपत्ति पुनीत ।
परिपाटी परमान करि, लिखी इहां निरनीत ॥ ५४ ॥

मनहरण (३१ वर्ण)

यामें ज्ञानको प्रधान करिके प्रगटपने,
शुद्ध दरवारथीक नयको कथन है ।
अध्यातमवानी आतमाको अधिकार यातें,
याको शुद्ध निश्चैनय नाम हू नथन है ॥

तथा परमारथ हू नाम याको जथारथ,
इहां परजाय नय गौनता गथन है ।
परबुद्धित्यागी जो स्वरूप शुद्धहीमें रमें,
सोई कर्म नाश शिव होत यों मथन है ॥ ५५ ॥

कवित्त ।

या प्रकार गुरुपरंपरातें, यह दुतीयसिद्धान्त प्रमान ।
शुद्ध सुनयके उपदेशक इत, शास्त्र विराजत है परधान ॥
समयसार पंचास्तिकाय श्री,-प्रवचनसार आदि सुमहान ।
कुंदकुद गुरु मूल बखानें, टीका अमृतचन्द्रकृत जान ॥ ५६ ॥

कविप्रार्थना ।

तामें प्रवचनसारकी, वाँचि वचनिका मजु ।
छन्दरूपरचना रचों, उर धरि गुरुपदकजु ॥ ५७ ॥
कहँ परमागम अगम यह, कहँ मम मति अतिहीन ।
शशि सपरशके हेतु जिमि, शिशु कर ऊंचो कीन ॥५८॥
तिमि मम निरख सुधीटता, हँसि कहि है परवीन ।
काक चहत पिक-मधुर-धुनि, मूक चहत कविकीन ॥५९॥

चौपाई ।

यह परमागम अगम बताई । मो मति अलप रचत कविताई ।
सो लख हँसि कहिहैं मति धीरा । शिरिषसुमनकरि वेधत हीरा ६०

दोहा ।

बाल मराल चहै जथा, मन्दिरमेरु उठाव ।
बालबुद्धि भवि वृंद तिमि, करन चहत कवितात्र ॥ ६१ ॥

पूरव सुकविसहायतें, जिनशासनकी छाँहिं ।
हूं यह साहस कीन है, सुमरि सुगुरु मनमाँहिं ॥ ६२ ॥
मूलग्रन्थअनुसार जो, भाषा बनै प्रबंध ।
तौ उपमा सांची फबै, "सोना और सुगंध" ॥ ६३ ॥

चौपाई ।

मै तो बहुत जतन चित राखी। रचि हों छंद जिनागम शाखी।
पै प्रमादतें लखि कहुं दूषन। शोधि शुद्ध कीजे गुनभूषन ॥६४॥

दोहा ।

सज्जन चाल मराल सम, औगुन तज गुन लेत ।
शारद[1]वाहन वारि तज, ज्यों पयपान करेत ॥ ६५ ॥

षट्पद ।

जब लगि वस्तु विचार करत, कवि काव्य करनहित ।
तब लगि विषयविकार रुकत, शुभध्यान रहत चित ॥
ऐसे निजहित जान, बहुरि जब जगमें व्यापत ।
तब जे बाँचहिं सुनहिं, तिन्हें है ज्ञान परापत ॥
यों निज परको हित हेत लखि, **वृंदावन** उद्यम करत ।
परमागम प्रवचनसारकी, छंदबद्ध टीका धरत ॥ ६६ ॥

प्रवचनचारग्रन्थस्तुति ।

नय नय अनेकान्त दुतिधार। पय पय सुपरबोध करतार ।
लय लय करत सुधो[2]रस धार। जय जय सो श्रीप्रवचनसार ॥६७॥

---

१ हंस । २ दूसरी प्रति मे 'समामृत' पाठ है ।

अरिल्लछन्द ।

द्वादशांगको सार जु सुपरविचार है ।
सो संजमजुत गहत होत भव पार है ॥
ताखु हेत यह शासन परम उदार है ।
यातैं प्रवचनसार नामनिरधार है ॥ ६८ ॥

मूलग्रन्थकर्त्ता श्रीमत्कुन्दकुन्दाचार्यकी स्तुति ।

अशोकपुष्पमंजरी ।

जासके मुखारविंदतैं प्रकाश भास वृंद,
स्यादवाद जैन वैन इंदु कुंदकुदसे ।
तासके अभ्यासतैं विकाश भेदज्ञान होत,
मूढ सो लखै नहीं कुवुद्धि कुंदकुंदसे ॥
देत हैं अशीस शीस नाय इंद्र चंद्र जाहि,
मोह-मार-खंड मारतंड कुंदकुंदसे ।
शुद्धबुद्धिवृद्धिदा प्रसिद्धरिद्धिसिद्धिदा,
हुए, न हैं, न होंहिंगे, मुनिंद कुंदकुंद से ॥ ६९ ॥

इति भूमिका ।

ओंनमः सिद्धेभ्यः

काशीनिवासी कविवरवृन्दावनविरचित—

प्रवचनसार ।

मंगलाचरण । षट्पद ।

स्वयं सिद्धिकरतार, करै निज कर्म शर्मनिधि ।
ओपै करण स्वरूप, होय साधन सोधै विधि ॥
संप्रदानता धरै, आपको आप समप्पै ।
अपादानतें आप, आपको थिर कर थप्पै ॥
अधिकरण होय आधार निज, वरतै पूरणब्रह्म पर ।
इमि षट्विधिकारकमय रहित, विविध एक विधि अज अमर ॥ १ ॥

दोहा ।

महततत्त्व महनीय मह[1], महाधाम गुणधाम ।
चिदानंद परमातमा, वंदौं रमताराम ॥ २ ॥
कुनयदमनि सुवचन अवनि, रमन स्यातपद शुद्धि ।
जिनवानी मानी मुनिपै[2], घटमें करहु सुबुद्धि ॥ ३ ॥

चौपाई ।

पंच इष्ट पदके पद वन्दौं । सत्यरूप गुरुगुण अभिनन्दौं ।
प्रवचनसारग्रन्थकी टीका । बालबोधभाषामय नीका ॥ ४ ॥

---

१ तेज । २ मुनिराज ।

रचौ आप परको हितकारी । भव्य जीव आनन्दविथारी ॥
प्रवचन जलधि अर्थ जल लैहै । मति-भाजन-समान जल पैहै ५

दोहा ।

अमृतचंदकृत संसकृत, टीका अगम अपार ।
तिन अनुसार कहौ कछू, सुगम अलप विसतार ॥ ६ ॥

---

(१)

मतगयन्द ।

श्रीमत वीर जिनेश यही, तिनके पद वंदत हौ लवलाई ।
वन्दत वृन्द सुरिन्द जिन्हें, असुरिन्द नरिन्द सदा हरषाई ॥
जो चउ घातिय कर्म महामल, धोइ अनन्त चतुष्टय पाई ।
धर्म दुधातमके करता प्रभु, तीरथरूप त्रिलोकके राई ॥ ७ ॥

चौपाई ।

वरतत है शासन अब जिनको । उचित प्रनाम प्रथम लिख तिनको
कुंदकुंद गुरु वन्दन कीना । स्यादवादविद्या परवीना ॥ ८ ॥

(२)

मनहरण ।

शेष तीरथेश वृषभादि आदितेईस औ,
सिद्ध सर्व शुद्ध बुद्धिके करँडवत हैं ।
जिनको सदैव सदभाव शुद्धसत्ताहीमें,
तारनतरनको तेई तरंडवत हैं ॥

आचारज उवझाय साधुके सुगुन ध्याय,
पंचाचारमाहिं वृन्द जे अखंडवत है।
येई पंच पर्म इष्ट देत हैं अभिष्ट शिष्ट,
तिनैं भक्तिभावसों हमारी दंडवत है ॥ ९ ॥

दोहा।

देव सिद्ध अरहतको, निज सत्ता आधार।
सूर साधु उवझाय थित, पंचाचारमझार ॥ १० ॥
ज्ञान दरश चारित्र तप, वीरज परम पुनीत।
येही पंचाचारमें, विचरहिं श्रमण सनीत ॥ ११ ॥

(३)

अशोकपुष्पमंजरी।

पच शून्य पंच चार योजन प्रमान जे,
मनुष्यक्षेत्रके विषै जिनेश वर्तमान हैं।
तासके पदारविंद एक ही सु बार वृंद,
फेर भिन्न भिन्न वंदि भव्य-अब्ज-भान हैं ॥
वर्तमान भर्तमें अबै सुवर्तमान नाहिं,
श्रीविदेहथानमें सदैव राजमान हैं।
हेत औ अर्हंतरूप वंदना करौं त्रिकाल,
सो दयाल देत रिद्धि सिद्धिके निधान हैं ॥१२॥

दोहा।

आठों अंग नमाइकै, भूमें दंडाकार।
गुरुवर सुजस उचारियै, सो वंदन विस्तार ॥ १३ ॥

निज चैतन्य सुभावकरि, तिनसों है लवलीन ।
सो अद्वैत सुवन्दना, भेदरहित परवीन ॥ १४ ॥

(४)

माधवी ।

करि वंदन देव जिनिंदनकी, ध्रुव सिद्ध विशुद्धनको उर ध्यावों ।
तिमि सर्व गनिंद गुनिंद नमों, उदघाट कपाटक ठाट मनावों ॥
मुनि वृंद जिते नरलोकविषैं, अभिनंदित है तिनके गुन गावों ।
यह पंच पदस्त प्रशस्त समस्त, तिन्हें निज मस्तक हस्त लगावों १५

(५)

इनके विसरामको धाम लसै, अति उज्वल दर्शनज्ञानप्रधाना ।
जहँ शुद्धुपयोग सुधारस वृंद, समाधि समृद्धिकी वृद्धि वखाना ॥
तिहिको अवलंबि गहों समता, भवताप मिटावन मेघ महाना ।
जिहितें निरवान सुथान मिलै, अमलान अनूपम चेतन वाना १६

(६)

चौवोला ।

जो जन श्री जिनराजकथित नित, चित्तविषैं चारित्त धरै ।
सम्यकदर्शनज्ञान जहां, अमलान विराजित जोति भरै ॥
सो सुर इंद वृंद सुख भोगै, असुर इंदको विभव वरै ।
होय नरिंद सिद्धपद पावै, फेरि न जगमें जन्म धरै ॥ १७ ॥

(७)

निहचै निज सुभावमें थिरता, तिहि चारितकहँ धरम कहै ।
सोई पर्म धर्म समतामय, यों सर्वज्ञ कृपाल महै ॥

जामें मोह क्षोभ नहिं व्यापत, चिद्विलास दुति वृंद गहै ।
सो परिनामसहित आतमको, शाम नाम अभिराम अहै॥१८॥

दोहा ।

चिदानन्द चिद्रूपको, परम धरम शमभाव ।
जामें मोह न राग रिस, अमल अचल थिर भाव ॥ १९ ॥
सोई विमल चरित्र है, शुद्ध सिद्धपदहेत ।
शामसरूपी आतमा, भविक वृंद लखि लेत ॥ २० ॥

(८)

सवैयाछंद ।

जब जिहि परनति दरब परनमत, तब तासों तन्मय तिहि काल ।
श्रीसर्वज्ञकथित यह मारग, मथित गुरू गनधर गुनमाल ॥
तातें धरम सुभाव परिनवत, आतमहूको धरम सम्हाल ।
धरमी धरम एकता नयकी, इहा अपेक्षा वृंद विशाल ॥ २१ ॥

दोहा ।

वीतराग चारित्र है, परम धरम निजरूप ।
ताके धारत जीवको, धर्म कह्यो जिनभूप ॥ २२ ॥
एक एक धर्मीविषै, वसत अनन्ते धर्म ।
मिलत न काहूसों कोई, यह सुभावगति पर्म ॥ २३ ॥
जब धर्मी जिहि धर्मकी, परनवत जुत निज शक्त ।
तब तासों तन्मय तहां, होत शक्ति करि व्यक्त ॥ २४ ॥

तातैं आतमराम जब, धरै शुद्ध निज धर्म ।
तब ताहूको नाम गुरु, कह्यो धर्म तजि भर्म ॥ २५ ॥
[1]अयमय गोला अगनितें, लाल होत जिहि काल ।
अनल ताहि तब सब कहत, देखो बुद्धि विशाल ॥ २६ ॥
तैसे जिन जिन धर्म करि, प्रणवहि वस्त समस्त ।
तन्मय तासों होहिं तब, यह सुभाव अनअस्त ॥ २७ ॥
अग्नि पृथक गोला पृथक, यह सजोगसंबंध ।
त्यों धर्मी अरु धर्ममें, भेद नही है खंध ॥ २८ ॥
सिख संबोधनको सुगुरु, देत विदित दृष्टात ।
एकदेश सो व्यापता, सुनों भविक तजि भ्रांत ॥ २९ ॥
धर्मी धर्म दुहूनको, तादात्मक संबंध ।
है प्रदेश प्रति एकता, सहज सुभाव असंध ॥ ३० ॥

(९)

षट्पद ।

जब यह प्रनवत जीव, दयादिक शुभपयोग मय ।
अथवा अशुभ स्वभाव गहत, जहँ विषय भोग लय ॥
किंवा शुद्धुपयोगमयी, जहँ सुधा बहावत ।
जुत परिनामिक भाव, नाम तहँ तैसो पावत ॥
जिमि सेत फटिक वश झांकके, झांक वृन्द रंगत गहत ।
तजि झांक झांक जब झाकियत, तब अटांक सदपद महत ३१

१ लोहमयी ।

(१०)

सोरठा ।

दरवन विन परिनाम, परनति दरव विना नहीं ।
दरव गुनपरजधाम, सहित अस्ति जिनवर कही ॥ ३२ ॥

मनहरण ।

केई मूढ़मती कहैं द्रव्यमें न गुन होत,
  द्रव्य और गुननको न्यारो न्यारो थान है ।
गुनके गहनतें कहावे द्रव्य गुनी नाम,
  जैसे दंड धारै तब दंडी परधान है ॥
तासों स्यादवादी कहै यह तो विरोध बात,
  विना गुन द्रव्य जैसे खरको विषान है ।
विन परिनाम तेने द्रव्य पहिचाने कैसे,
  परिनामहूको कहा थान विद्यमान है ॥ ३३ ॥
देखो एक गोरस त्रिविधि परिनाम धरै,
  दूध दधि घृतमें ही ताको विस्तार है ।
ऐसे ही दरव परिनाम विना रहै नाहिं,
  परिनामहूको वृन्द दरव अधार है ॥
गुनपरजायवंत द्रव्य भगवंत कही,
  सुभाव सुभावी ऐसे गही मनधार है ।
जैसे हेम द्रव्य गुन गौरव सुपीतनादि,
  परजाय कुण्डलादि निरधार है ॥ ३४ ॥

तातैं आतमराम जब, धरै शुद्ध निज धर्म ।
तब ताहूको नाम गुरु, कह्यो धर्म तजि भर्म ॥ २५ ॥
अयमय[1] गोला अगनितैं, लाल होत जिहि काल ।
अनल ताहि तब सब कहत, देखो बुद्धि विशाल ॥ २६ ॥
तैसे जिन जिन धर्म करि, प्रणवहि वस्त समस्त ।
तन्मय तासों होहिं तब, यह सुभाव अनअस्त ॥ २७ ॥
अग्नि पृथक गोला पृथक, यह सजोगसंबंध ।
त्यों धर्मी अरु धर्ममें, भेद नही है खंध ॥ २८ ॥
सिख संबोधनको सुगुरु, देत विदित दृष्टांत ।
एकदेश सो व्यापता, सुनों भविक तजि भ्रांत ॥ २९ ॥
धर्मी धर्म दुहूनको, तादात्मक संबंध ।
है प्रदेश प्रति एकता, सहज सुभाव असंध ॥ ३० ॥

(९)

षट्पद ।

जब यह प्रनवत जीव, दयादिक शुभपयोग मय ।
अथवा अशुभ स्वभाव गहत, जहँ विषय भोग लय ॥
किवा शुद्धुपयोगमयी, जहँ सुधा बहावत ।
जुत परिनामिक भाव, नाम तहँ तैसो पावत ॥
जिमि सेत फटिक वश झांकके, झांक वृन्द रंगत गहत ।
तजि झांक झांक जब झांकियत, तब अटांक सदपद महत ३१

[1] लोहमयी ।

(१०)

सोरठा।

दरबन विन परिनाम, परनति दरब विना नहीं।
दरब गुनपरजधाम, सहित अस्ति जिनवर कही ॥ ३२ ॥

मनहरण।

केई मूढमती कहैं द्रव्यमें न गुन होत,
द्रव्य और गुननको न्यारो न्यारो थान है।
गुनके गहनतै कहावै द्रव्य गुनी नाम,
जैसे दंड धारै तब दंडी परधान है॥
तासौ स्यादवादी कहै यह तो विरोध बात,
विना गुन द्रव्य जैसे खरको विषान है।
बिन परिनाम तैने द्रव्य पहिचाने कैसे,
परिनामहूको कहा थान विद्यमान है॥ ३३ ॥
देखो एक गोरस त्रिविधि परिनाम धरै,
दूध दधि घृतमें ही ताको विस्तार है।
तैसे ही दरव परिनाम विना रहै नाहिं,
परिनामहूको वृन्द दरब अधार है॥
गुनपरजायवंत द्रव्य भगवंत कही,
सुभाव सुभावी ऐसे गही गनधार है।
जैसे हेम द्रव्य गुन गौरव सुपीततादि,
परजाय कुंडलादिमई निरधार है॥ ३४ ॥

जैसे जो दरब ताको तैसो परिनाम होत,
देखो भेदज्ञानसों न परौ दौर धूपमें ।
तातै जब आतमा प्रनवै शुभ वा अशुभ,
अथवा विशुद्धभाव सहज सरूपमें ॥
तहां तिन भावनिसों तदाकार होत तब,
व्याप्य अरु व्यापकको यही धर्म रूपमें ।
कुंदकुंद स्वामीके वचन कुंद इंदुसे है,
धरौ उर वृन्द तो न परौ भवकूपमें ॥ ३५ ॥

(११)

मत्तगयन्द ।

धर्म सरूप जबै प्रनवै यह, आतम आप अध्यातम ध्याता ।
शुद्धपयोग दशा गहिकै, सु लहै निरवान सुखामृत ख्याता ॥
होत जबै शुभरूपपयोग, तबै सुरगादि विभौ मिलि जाता ।
आपहि है अपने परिनामनिको फल भोगनहार विधाता॥३६॥

मोतीदाम ।

जबै जिय धारत चारित शुद्ध । तबै पद पावत सिद्ध विशुद्ध ।
सराग चरित्त धरै जब चित्त । लहै सुरगादिविषै वर वित्त ३७

दोहा ।

तातै शुद्धुपयोगके, जे सम्मुख है जीव ।
तिनको शुभ चारित्रमहँ, रमनो नाहिं सदीव ॥ ३८ ॥

(१२)

माधवी ।

अशुभोदयतें यह आतमराम, अनंत कलेश निरंतर पायो ।
कुमनुष्य तथा तिरजंचनिमें, बहुधा नरकानलमें पचि आयो ॥
नहिं पार मिल्यो परिवर्त्तनको, इहि भांति अनादि कुकाल गमायो।
अब आतमधर्म गहो सुख कन्द, जिनिंद जथा भवि वृन्द बतायो॥

दोहा ।

महा दुःखको बीज है, अशुभरूप परिनाम ।
याके उदय अनन्त दुख, भुगते आतमराम ॥ ४० ॥
दारिद दुख नर नीच पद, इत्यादिक फल देत ।
नारकगति तिरजंचगति, याको सहज निकेत ॥ ४१ ॥
तातें तजिये सर्वथा, अव्रत विषय कषाय ।
याके उदय न बनि सकत, एकौ धर्म उपाय ॥ ४२ ॥
शुभ परिनामनके विषै, है विवहारिक धर्म ।
दया दान पूजादि बहु, तप संयम शुभकर्म ॥ ४३ ॥
ताहि कथंचित धारिये, लखिये आतमरूप ।
शिवमगको सहकार यह, यों भाषी जिनभूप ॥ ४४ ॥

(१३)

मनहरण ।

शुद्ध उपयोग सिद्ध भयो है प्रसिद्ध जिन्हें,
ऐसो सिद्ध अरहंतनके गाइयतु है ।

आतम सुभावतै उपजो साहजीक सुख,
सबतै अधिक अनाकुल पाइयतु है ॥
अच्छ पच्छतै विलच्छ विषैसों रहित स्वच्छ,
उपमाकी गच्छसों अलच्छ ध्याइयतु है ।
निराबाध है अनन्त एकरस रहै संत,
ऐसे शिवकंतकी शरन जाइयतु है ॥ ४५ ॥

(१४)

शुद्धउपयोग जुक्त जती जे विराजत हैं,
सुनो तासु लच्छन विचच्छन बुधारसी ।
भलीभांति जानत जथारथ पदारथको,
तथा श्रुतसिंधु मथि धारत सुधारसी ॥
संजमसों मंडित तपोनिधान पंडित है,
रागदोष खंडिके बिहंडत सुधारसी ।
जाके सुख दुखमें न हरष विषाद वृन्द
सोई पर्मधर्मधार धीर मो उधारसी ॥ ४६ ॥

दोहा ।

जो मुनि सुपरविभेद धरि, करे शुद्ध सरधान ।
निज सरूप आचरनमें, गाडै अचल निशान ॥ ४७ ॥
सकल सूत्र सिद्धान्तको, भलीभाति रस लेत ।
तप संजम साधै सुधी, रागदोष तजि देत ॥ ४८ ॥
जीवन मरनविषै नही, जाके हरष विषाद ।
शुद्धुपयोगी साधु सो, रहित सकल अपवाद ॥ ४९ ॥

(१८)

मत्तगयद ।

जो उपयोग विशुद्ध विभाकर, मडित है चिन्मूरतराई ।
सो वह केवलज्ञानधनी, सब ज्ञेयके पार ततच्छन जाई ॥
घाति चतुष्टय तास तहाँ, स्वयमेव विनाश लहै दुखदाई ।
शुद्धुपयोग परापतिकी, महिमा यह वृंद मुनिंदन गाई ॥५०॥

षट्पद ।

जिस आतमके परम सुद्ध, उपयोग सिद्ध हुव ।
तिसके जुग आवरन, मोहमल विघन नास ध्रुव ॥
सकल ज्ञेयके पार जात सो, आप ततच्छन ।
ज्ञान फुरन्त अनन्त, सोइ अरहंत सुलच्छन ॥
महिमा महान अमलान नव, केवल लाभ सुधाकरन ।
शिवथानदान भगवानके, वृंदावन वंदत चरन ॥ ५१ ॥

(१६)

मनहरण ।

ताही भाँति विमल भये जे आप चिदानन्द,
तासको स्वयंभू नाम ऐसो दरसायो है ।
प्रापत भये अनन्त ज्ञानादि स्वभाव गुन,
आपही ते आपमाहिं सुधा बरसायो है ॥
सोई सरवज्ञ तिहूँकालके समस्त वस्त,
हस्तरेखसे प्रशस्त लखै सरसायो है ।

ताहीके पदारविंद देव इंद नागइंद
मानुषेंद वृंद वंदि पूज हरषायो है ॥ ५२ ॥

पट्कारकनिरूपण । दोहा ।

निजस्वरूप प्रापतिविषै, पर सहाय नहिं कोय ।
षटप्रकार कारकनिमें, यह आतम थिर होय ॥ ५३ ॥
तासु नाम लक्षण सुगम, कहों जथारथ रूप ।
जैनवैनकी रीतिसों, ज्यों गुरुकथित अनूप ॥ ५४ ॥
करता करम करन तथा, **संप्रदान** उर आन ।
अपादान पुनि **अधिकरन,** ये षट्कारक मान ॥ ५५ ॥

गीतिका ।

स्वाधीन होइ करै सोई, **करतार** ताको जानिये ।
करतारकी करतूतिको, कहि **करम** कारक मानिये ॥
जाकरि करमको करत करता, **करन** ताको नाम है ।
वह करम जाको देत **संपरदान**सो सरनाम है ॥ ५६ ॥
पूरव अवस्था त्याग कर जो, होत नूतन काज है ।
सो जानिये पंचमो कारक **अपादान** समाज है ॥
जाके अधार वनै करम **अधिकरन** सोई ठीक है ।
यह नाम लच्छन हे विचच्छन छहोंकी तहकीक है ॥५७

भुजगी ।

जहां औरकी मान नैमित्तता । करै है सुधी काजकी सिद्धता ।
तहां है असद्भूतुपाचारता । कोई द्रव्य काहूको ना धारता ॥५८॥

मनहरण ।

जैसे कुंभकार **करतार** घट **कर्म** करै,
दंडचक्र आदिताके साधन **करन** है ।
जब घट कर्मको बनाय जलहेत देत,
तहाँ **संप्रदान** नाम कारक वरन है ॥
पूरव अवस्था मृतपिंडको विनाश भये,
घट निरमये **अपादानता** धरन है ।
भूमिके अधार घट कर्मको बनावत है,
तहां **अधिकर्न** होत संशय हरन है ॥ ५९ ॥

दोहा ।

यामें करतादिक पृथक्, यातें यह व्यवहार ।
सम्यकबुद्धि पसारकें, समझ लेहु श्रुतिद्वार ॥ ६० ॥

लक्ष्मीधरा ।

आप ही आपते आपको साधता,
औरकी नाहिं, आधार आराधता ।
नाम निश्चै यही सत्य है सासता,
स्यादवादी विना कौनको भासता ? ॥ ६१ ॥

षट्पद ।

ज्यों माटी करतार, सहज सत्ता प्रमानमय ।
अपने घट परिनाम, करमको आप करत हय ॥
आपहि अपने कुंभ करनको, साधन हो है ।
आप होय घट कर्म, आपको देत सु सोहै ॥

आप ही अवस्था पूर्वकी, त्यागि होत घटरूप घट ।
अपने अधार करि आप ही, होत प्रगट घटरूप ठट ॥ ६२ ॥

सहज सकति स्वाधीन, सहित **करतार** जीव ध्रुव ।
करत शुद्ध सरवंग, आपको यही **करम** हुव ॥
निज परनति करि करत, आपको शुद्ध **करन** तित ।
सो गुन आपहि आप, देत यह **संप्रदान** हित ॥

तजि समल विमल आपहि बनत, **अपादान** तब उर धरन ।
करि निजाधार निज गुन अमल, तहां आप सो **अधिकरन**॥६३

चौबोला ।

जब संसार दशा तज चेतन, शुद्धपयोग स्वभाव गहै ।
तब आप हि षटकारकमय है, केवलपद परकाश लहै ॥
तहां स्वयंभू आप कहावत, सकल शक्ति निज व्यक्त अहै ।
चिद्विलास आनन्दकन्द पद, वंदि **वृन्द** दुखद्वंद दहै ॥६४॥

(१७)

द्रुमिला ।

तिस ही अमलान चिदातमके, निहचै करि वर्तत है जु यही ।
उतपाद भयो जो विशुद्ध दशा, तिसको न विनाश लहै कब ही॥
अरु भंग भये परसंगिक भावनिको उतपाद नहीं जो नही ।
पुनि है तिनके ध्रुव वै उतपाद, सदीव सुभाविकमाहिं सही ६५

दोहा ।

शुद्धुपयोग अराधिके, सिद्ध भये सरवंग ।
जे अनन्त ज्ञानादिगुन, तिनको कबहुं न भंग ॥ ६६ ॥

अरु अनादिके करममल, तिनको भयो विनाश।
सो फिर कबहुं न ऊपजै, जहां शुद्ध परकाश ॥ ६७ ॥
पुनि ताही चिद्रूपके, वर्तत है यह धर्म।
उपजन विनशन ध्रुव रहन, साहजीक पद पर्म ॥ ६८ ॥
द्रव्यदृष्टिकर ध्रौव्य है, उपजत विनशत पर्ज।
षट्गुनहानरु वृद्धि करि, वरनत श्रुति भ्रम वर्ज ॥ ६९ ॥

(१८)

मनहरण।

जेते हैं पदारथके जात विद्यमान तेते,
उतपाद व्यय भाव धरें सदाकाल है।
अर्थ परजायमें कि विंजन परजमाहिं,
अथवा विभाव कै स्वभाव पर्जपाल है ॥
याहीके अधार निराधार निज सत्ताधार,
निजाधार निरावाध द्रव्य गुनमाल है।
कुंदकुंद इंदुके वचन अमी वृंद पियो,
जाको इंद-चंद-वृंद वंदत त्रिकाल है ॥ ७० ॥

किरीट।

जो जगमें सब वस्तु विराजत, सो उतपादरु व्यै ध्रुव धारक।
है परजाय सुभावमई कि विभाव कि अर्थ कि विंजन कारक ॥
है इनहीकरकें तिनकी, तिहुँकाल विषै सदभाव उदारक।
या विन द्रव्य सधै न किसी विधि, यों श्रुतिसिंधु मथी गनधारक ॥

मत्तगयन्द ।

कुंडलरूप भयो जब कंचन, कंकनता तब ही तज दीनों ।
ध्रौव्य दुहूमहँ आपहि है, गुन गौरव पीत सचिक्कन लीनों ॥
त्यों सब द्रव्य सदा प्रनवै, परजायविषैं गुन संग धरीनो ।
तीन विहीन नही कोउ वस्तु, यही उनको सदभाव प्रवीनो ७२

मनहरण ।

घरम अघरम अकाश काल चारों द्रव्य,
सहज सुभाव परजायमाहिं रहै हैं ।
षटगुनी हानि वृद्धि करें समै समै माहि,
अगुरुलघुगुनके द्वार ऐसे कहै है ।
गतिथिति अवकाश वर्तना गुन निवास,
चारोंमें यथोचित स्वसत्ताही को गहै हैं ।
जीव पुदगलमें विराजै दोऊ परजाय,
विभाव तथा सुभाव जब जैसो लहै हैं ॥ ७३ ॥

दोहा ।

ज्यों मानुष तन त्यागिकै, उपजत सुरपुर जीव ।
दुहूँ दशामें आप ध्रुव, इमि तिहु सधत सदीव ॥ ७४ ॥
अथवा सिद्धदशाविषैं, ऐसे साघी साध ।
समल दशा तजि अमल हुव, वह ध्रुव जीव अबाध ॥ ७५ ॥
अथवा ज्ञानादर्शमें, दरसि रहै सब ज्ञेय ।
ज्ञेयाकार सुज्ञान तहँ, होत प्रतच्छ प्रमेय ॥ ७६ ॥

तिन ज्ञेयनकी त्रिविध गति, जिह जिह भाँति सुहोत ।
तिहि २ भाँति सुज्ञान वह, प्रनवत सहज उदोत ॥ ७७ ॥
याही भांति प्ररूपना, सिद्ध दशाके माँह ।
उतपतव्ययध्रुवकी सधत, अनेकांतकी छाँह ॥ ७८ ॥
षटगुनि हानिरु वृद्धिकी, जा विधि उठत तरंग ।
सहज सुभाविक भावमें, सोऊ सधत अभंग ॥ ७९ ॥
उपजन विनशन ध्रौव्यके, विना द्रव्य नहिं होय ।
साधी गुरु सिद्धान्तमें, बाधी तहाँ न कोय ॥ ८० ॥

प्रश्न— शिखरिणी

कहो उत्पादादी त्रिविधिकर अस्तित्व तुमने ।
सुनी मैंने नीके उठत तब शंका मुझ मने ॥
त्रिधा काहे भाषो, ध्रुवहि करिके क्यों नहिं कहो ।
कहा यातें नाहीं सधत? सब वस्तें मुनि महो ॥ ८१ ॥

उत्तर— अनङ्गशेखर । (दडक ३२ वर्ण)

पदार्थको जु ध्रौव्य रूप एक पच्छ मानिये,
तु तासुमें प्रतच्छ दोष लच्छ लच्छ जानिये ।
कुटस्थ रूप राजतौ प्रवृत्त त्याजि भाजतौ,
विराजतौ सदैव एक रूप ही बखानिये ॥
सु तौ नहीं विलोकिये विलोकिये त्रिधातमीक,
एक वस्तुकी दशा अनेक होत मानिये ।
सुवर्ण कुंडलादि होत दूधतैं घृतादि जोत,
मृत्तिका घटादिको तथैव सो प्रमानिये ॥ ८२ ॥

दोहा ।

दरवमाहिं दो शक्ति है, भाषी गुन परजाय ।
इन विन कबहुँ न सधि सकत, कीजे कोटि उपाय ॥८३॥
नित्य तदातमरूपमय, ताको गुन है नाम ।
जो क्रमकरि वरतै दशा, सो परजाय ललाम ॥ ८४ ॥
कहीं कही है द्रव्यकी, दोइभाँति परजाय ।
नित्यभूत तद्रूप इक, दुतिय अनित्य बताय ॥ ८५ ॥
नित्यभूतको गुन कहै, दुतिय अनित्य विभेद ।
ताहि कही परजाय गुरु, यह मत प्रबल अछेद ॥ ८६ ॥
तिन परजायनकरि दरव, उपजत विनशत मान ।
ध्रौव्यरूप निजगुणसहित, दुहूँ दशामें जान ॥ ८७ ॥
याही कर सद्भाव तसु, यह है सहज सभाव ।
यहां तर्क लागै नही, वृथा न गाल बजाव ॥ ८८ ॥

उक्त च देवागमे—चोपाई ।

श्रीगुरु त्रिविधि तत्त्वको साधत । प्रगट दिखावत हैं निरवाधत ॥
घट परजाय धरै जो सोना । ताहि नाशि करि मुकुट सु होना ॥८९
तहां कुंभ सो जो रुचि रेखी । ताके होत विषाद विशेखी ॥
मौलि बनेंतें जाके प्रीती । ताके हरष होत निरनीती ॥ ९० ॥
जाके सोनाहीसों काजा । सो दुहुमें मध्यस्थ विराजा ॥
तब कहु दरव त्रिविधि नहिं कैसे ? प्रगट विलोक हेतु जुत ऐसे९१
गोरस एक त्रिविधि परनवै । दूध दधी घृत जग वरनवै ॥
प्रनवन सकति नही तामाहिं । तब किहि भांति त्रिविधि हो जाहिं

देखो! प्रथम दूध रस रहा। दधि होते गुन औरै गहा।
घृत होते फिर औरहि भयो। स्वाद भेद गुन औरहि लयो॥९३॥
दूधव्रती दधि घृतको खाता। दधिव्रती घृत दूध लहाता॥
घृतव्रतधारी पय दधि गहै। पृथक तत्त्व तब क्यों नहिं अहै॥९४॥
एकै रूप जु गोरस होतो। तीन दशा तब किमि उद्दोतो?॥
तातें तत्त्व त्रिधातम सही। न्यायसिंधु मथि श्रीगुरु कही॥९५॥

(१९)

मत्तगयन्द।

जो चहु घातिय कर्म विनाशि, अतिंद्रियरूप भयो अमलाना।
ताहि अनन्त जगे वर बीजरु, तेज अनन्त अपार महाना॥
सो वह आपहि ज्ञान सुखादि, सरूपमयी प्रनयौ भगवाना।
जासु विनाश नहीं कबहीं, गुन वृंद चिदानँदकंद प्रधाना॥९६॥

(२०)

केवलज्ञानघनी भगवानकी, रीति प्रधान अलौकिक गाई।
देह धरें तउ देहज दुःख, सुखादि तिन्हें नहिं होत कदाई॥
जातें अतिंद्रिय रूप भये सुख, छायक वृंद सुभायक पाई।
तातें तिन्हें न विकार कछू, अविकार अनन्तप्रकार बताई॥९७॥

दोहा।

सकल घात संघात हत, प्रगट्यो बीज अनन्त।
परम अतिंद्रिय सुखमयी, जाको कबहुँ न अन्त॥ ९८॥
ताको जे मतिमंद शठ, भाषैं कवलाहार।
धिग है तिनकी समुझिको, वार वार धिक्कार॥ ९९॥

गुनथानक छट्टम विषैं, होत अहार विहार।
ताके ऊपर ध्यानगत, तहां न भुक्ति लगार ॥ १०० ॥
जे तेरम गुनथानमें, अचल चहूँ अरि जार।
छायकलब्धिस्वभाव जहँ, तहँ किमि कवलाहार? ॥१०१॥

क्षुधा त्रषा बाधा करै, इन्द्री पीड़ैं प्रान।
यह तो गति संसारमें, जगजीवनकी जान ॥ १०२ ॥
जहां अतिंद्रिय सुखसहित, चिदानन्द चिद्रूप।
तहां कहां बाधा जहां, प्रगटी शकति अनूप ॥ १०३ ॥

मोह करम विन वेदनी, निरविष विषधर जेम।
जरी जेवरी बलरहित, अबल अघाती तेम ॥ १०४ ॥

सकत अनंतानंत जस, प्रगट भयो निरबाध।
तँह चेतन तनसहितकहँ, लगत न तनिक उपाध ॥१०५॥
निजानन्द रसपान तहँ, चिदानन्द कहँ होत।
नोतनकरमसुवरगना, तिनकरि काय उदोत ॥ १०६ ॥

कर्मवरगना प्रति समय, पूर्वबंध संजोग।
आय लगहिं पुनि झरपरहिं, टिकहिं न विन उपयोग१०७
निविड़ मोहनी विघन अरु, ज्ञान दर्शनावर्न।
इनहिं नाशि निर्मल भये, अमल अचल पद धर्न ॥१०८
ते सांचे सर्वज्ञ है, तेई आप्त प्रधान।
तिनके वचन प्रमान है, भवि-उर-भ्रम-तम भान ॥१०९॥

(२१)

षट्पद ।

ज्ञानरूप परिनये, आपु जे केवलज्ञानी ।
तिनके सकलप्रतच्छ, द्रव्य गुन-परज-प्रमानी ॥
सो नहिं जानहिं ताहि, अवग्रह आदि क्रियाकर ।
जातें यह छदमस्थ, ज्ञानकी रीति प्रगट तर ॥
निहचै सो श्रीभगवानके, सकल आवरन नाश हुव ।
सर्वावभास निज ज्ञानमें, लोकालोक प्रतच्छ धुव ॥ ११० ॥

(२२)

षट्पद ।

इस भगवान महान, केवलज्ञान धनीकहँ ।
रह्यो न कछू परोक्ष, वस्तुके जानपनेमहँ ॥
जातें इन्द्रियरहित, अतीन्द्रियरूप विराजै ।
अरु सरवंग समस्त, अच्छके गुन छवि छाजै ॥
स्वयमेव हि ज्ञान सुभावकी, प्रापति है जिनके विमल ।
तिनको प्रतच्छ तिहुँ लोकके, वस्तुवृन्द झलकहिँ सकल १११

(२३)

मनहरण ।

ज्ञान गुनके प्रमान आतमा विराजमान,
जैसे हेम गुन पीत गौरवादिको धरै ।
सोई ज्ञानगुन ज्ञेयके प्रमान भाषै जथा,
अग्नि गुन उष्ण जितौ ईंधन तितौ जरै ॥

ज्ञेयको प्रमान वृंद, लोक औ अलोक सर्व,
तासुको विलोकत प्रतच्छरेखा ज्यों करै ।
ताहीतें सरवगति ज्ञानको सुसिद्ध करी,
स्वामीके वचन अनेकान्त रससों भरै ॥ ११२ ॥

(२४-२५)

ज्ञान गुनके प्रमान आतमा न मानत है,
ऐसे जो अजान इस लोकमें कुमती है ।
ताके मतमाहिं गुन ज्ञानतें अधिक हीन,
होत ध्रुवरूप वह आतमाकी गती है ॥
जे तो ज्ञानहीन ते तो जड़के समान भयो,
अचेतन तामें कहा ज्ञायक-शकती है ।
अधिक बखाने तो प्रमाने कैसे ज्ञान विना,
ऐसे परतच्छ स्वामी दोनों पच्छ हती है ॥११३॥

दोहा ।

जथा अगनि गुन उष्णतें, हीन अधिक नहि होत ।
तथा आतमा ज्ञान गुन, सहित बराबर जोत ॥ ११४ ॥
अन्वय अरु व्यतिरेकता, ज्ञान आतमामाहिं ।
विना ज्ञान आतम नही, आतम विनु सो नाहिं ॥११५॥
जहां जहां है आतमा, तहा तहा है ज्ञान ।
जहां जहां है ज्ञान गुन, तहा तहां जिय मान ॥ ११६ ॥
तातें हीनाधिक नही, ज्ञान सुगुनतें जीव ।
हीनाधिकके मानतें, बाधा लगत सदीव ॥ ११७ ॥

कछु प्रदेशपै ज्ञान है, कछु प्रदेशपै नाहिं ।
यों मानत जड़ चेतना, दोनों सम ह्वै जाहिं ॥ ११८ ॥
तब किमि शुद्ध समाधिमें, निरविकल्प थिर होय ।
द्विधा दशा किमि अनुभवै, किहि विधि शिवसुख होय ११९
तातें दृष्टि प्रमानतें, बाधित है यह पच्छ ।
साधित है निरबाध धुव, जीव ज्ञान यह स्वच्छ ॥१२०॥

(२६)

गीतिका ।

सर्वगत भगवानको, इस हेतुसों गुरु कहत है ।
तास ज्ञान प्रकाशमें, सब जगत दरसत रहत है ॥
गुन ज्ञानमय है रूप जिनका, ज्ञेय ज्ञानविषै मथा ।
तासतें सर्वज्ञ सबव्यापक, जथारथ यों कथा ॥१२१॥

षट्पद ।

शुचि दरपनमें जथा, प्रगट घट पट प्रतिभासत ।
मुकुर जात नहिं तहा, तौन नहिं मुकुर अवासत ॥
तथा शुद्ध परकाश, ज्ञान सब ज्ञेयमाहिं गत ।
ज्ञेय तहां थित करहिं, यह उपचार मानियत ॥
वह ज्ञान धरम है जीवको, धरमी धरम सु एक अत ।
या नयतें श्री सर्वज्ञको, कहै जथारथ सर्वगत ॥ १२२ ॥

दोहा ।

एक ब्रह्म सब जगतमें, व्यापि रह्यौ सरवंग ।
अपनेही परदेशकरि, नानारग उमग ॥ १२३ ॥

ऐसी जिनके कुमतिकी, उपज रही है पच्छ ।
तिनको मत शतखंडकरि, दूषत है परतच्छ ॥ १२४ ॥
निज परदेशनिकरि जबै, जगमें व्यापै आप ।
तब वह अमल समल भयौ, यह तो अमिल मिलाप ॥१२५॥
कछुक अमल कछु समल है, तौ भी बनै न बात ॥
एक वस्तुमें दो दशा, क्यों करि चित्त समात ॥ १२६ ॥
तातें ज्ञान प्रकाशमें, ज्ञेय सकल झलकंत ॥
सो निजज्ञानसुभावमय, आप प्रगट भगवंत ॥ १२७ ॥
यातें श्रीसरवज्ञको, कह्यो सर्वगत नाम ।
अन्तरछेदी ज्ञानमय, जगव्यापक जगधाम ॥ १२८ ॥
यातें जो विपरीत मत, ते सब सकल असिद्ध ।
स्यादवादतें सर्वगत, श्रीअरहंत सु सिद्ध ॥ १२९ ॥

(२७)

मनहर ।

जोई ज्ञान गुन सोई आतमा वखाने जातें,
दोऊमें कथंचित न भेद ठहरात है ।
आतमाविना न और द्रव्यमाहिं ज्ञान लसै,
ज्ञान गुन जीवमें ही दीखे जहरात है ॥
तथा जैसे ज्ञान गुन जीवमें विराजै तैसे,
और हू अनन्त गुन तामें गहरात है ।
गुनको समूह दव्व अपेक्षासों सिद्ध सव्व,
ऐसो स्यादवादको पताका फहरात है ॥ १३० ॥

द्रुमिला ।

गुणज्ञानहिंको जदि जीव कहै, तदि और अनन्त जिते गुन है ।
तिनको तब कौन अधार बने, निरधारविना कहु को सुन है[१]॥
गुनमाहिं नहीं गुन और बसै, श्रुति साधत श्रीजिनकी धुन है ।
तिसतें गुन पर्ज अनंतमयी, चिनमूरति द्रव्य सु आपुन है ॥

(२८)

षट्पद ।

ज्ञानी अपने ज्ञानभाव,—हीमाहिं विराजै ।
ज्ञेयरूप सब वस्तु, आपने थलमें छाजै ॥
मिलिकर बरतें नाहि, परस्पर ज्ञेयरु ज्ञानी ।
ऐसी ही मर्याद, वस्तुकी बनी प्रमानी ॥
जिमि रूपीदरबनि को प्रगट, देखत नयन प्रमानकर ।
तिमि तहां जथारथ जानिके, वृन्दावन परतीति धर १३२

(२९)

मनहर ।

ज्ञानी ना प्रदेशतें प्रवेश करै ज्ञेयमाहिं,
तथा व्यवहारसे प्रवेश हू सो करै है ।
अच्छातीत ज्ञानतें समस्त वस्तु देखे जानें,
पाथरकी रेख ज्यों न संग परिहरै है ॥
जैसे नैन रूपक पदारथ विलोकै वृन्द,
तैसे शुद्ध ज्ञानसों अमल छटा भरै है ।

मानों सर्व ज्ञेयको उखारिके निगलि जात,
शक्त व्यक्त तासको विचित्र ऐसो धरै है॥१३३॥

(३०)

जैसे इस लोकमें महान इन्द्रनील रत्न,
दूधमाहिं डारै तब ऐसो विरतंत है ।
आपनी आभासतें सफेदी भेद दूधकी सो,
नीलवर्न दूधको करत दरसंत है ॥
ताही भांति केवलीके ज्ञानकी शकति वृन्द,
ज्ञेयनको ज्ञानाकार करत लसंत है ।
निहचै निहारें दोऊ आपसमें न्यारे तौऊ,
व्याप्य अरु व्यापकको यही विरतंत है ॥१३४॥

(३१)

षट्पद ।

जो सब वस्तु न लसें, ज्ञान केवलमहँ आनी ।
तो तब कैसे होय, सर्वगत केवलज्ञानी ॥
जो श्रीकेवलज्ञान, सर्वगत पदवी पायो ।
तो किमि वस्तु न बसहि, तहां सब यों दरसायो ॥
उपचार द्वारतें ज्ञान जिमि, ज्ञेयमाहिं प्रापति कही ।
ताही प्रकारतें ज्ञानमें, वस्तु वृन्द वासा लही ॥ १३५॥

(३२)

मनहरण ।

केवली जिनेश परवस्तुको न गहै तजै,
तथा पररूप न प्रनवै तिहूँ कालमें ।

जातें ताकी ज्ञान जोति जगी है अकंपरूप,
छायक स्वभावसुख वेवै सर्व हालमें ॥
सोई सर्व वस्तुको विलोकै जाने सरवंग,
रंच हू न बाकी रहै ज्ञानके उजालमें ।
आरसीकी इच्छा विना जैसे घटपटादिक,
होत प्रतिबिंबित त्यों ज्ञानी गुनमालमें ॥१३६॥

दोहा ।

राग उदयतें संगरह, दोष भावतें त्याग ।
मोहउदय पर-परिनमन, ऐसे तीन विभाग ॥ १३७ ॥
गहन-तजन-परपरिनमन, इनहीतें नित होत ।
तास नाशकरिके भयो, केवल जोत उदोत ॥ १३८ ॥
जिनकी ज्ञानप्रभा अचल, यथा महामनि-जोत ।
प्रथमहिं जो सब लखि लियो, सो न अन्यथा होत १३९
जथा आरसी स्वच्छके, इच्छाको नहिं लेश ।
लसत तहा घटपट प्रगट, यही सुभाव विशेष ॥ १४० ॥
तैसे श्रीसरवज्ञके, इच्छाको नहिं अंस ।
निरइच्छा जानत सकल, शुद्धचिदातम हंस ॥ १४१ ॥
ऐसे श्रीसर्वज्ञ है, ज्ञान भान अमलान ।
वृंदावन तिनको नमत, सदा जोरि जुगपान ॥ १४२ ॥

(३३)

मत्तगयन्द ।

जो भवि भावमई श्रुतितैं, निज आतमरूप लखै सरवंगा ।
ज्ञायकभावमई वह आप, निजौ-परको पहिचानत चंगा ॥
सो श्रुतिकेवली नाम कहावत, जानत वस्तु जथावत अंगा ।
लोकप्रदीप रिषीसुरने, इहिभांति भनी भ्रमभानि प्रसंगा १४३

मनहरण ।

निरदोष गुनके निधान निरावर्नज्ञान,
ऐसे भगवान ताकी वानी सोई वेद है ।
ताके अनुसार जिन जान्यो निजआतमाको,
सहितविशेष अनुभवत अखेद है ॥
सोई श्रुतिकेवली कहावै जिन आगममें,
आपापर जाने भले भरम उछेद है ।
केवली प्रभूके परतच्छ इनके परोच्छ,
ज्ञायक शकतिमाहिं इतनो ही भेद है ॥ १४४॥
केवलीके आवरन नाशतें प्रतच्छ ज्ञान,
वेदै एकै काल सुखसंपत अनंत है ॥
इनके करम आवरनतें करम लियें,
जेतो जानपनो तेतो वेदै सुखसंत है ॥
कोऊ भानु उदै देखै सकल पदारथको,
कोऊ दीखे दीपद्वार थोरी वस्तु तंत है ।

जानत जथारथ पदारथको दोऊ वृंद,
प्रतच्छ परोच्छहीको भेद वरतंत है ॥ १४५ ॥
जैसे मेघावर्नतें बखाने भानुविभाभेद,
जोतिमें विभेद माने प्रगट लवेद है ।
एक ज्ञानधारामें नियारा पंचभेद तैसे,
जानत क्रियामें तहाँ भेदको निषेद है ॥
केवलीके आवरन नाशतें प्रतच्छ ज्ञान,
इनके परोच्छ श्रुतिद्वारतें सुवेद है ॥
सांचे सरधानी दोऊ राचे रामरगमाहिं,
कोऊ परतच्छ कोऊ परोच्छ अछेद है ॥१४६॥

तोटक ।

इहि भांति जिनागममाहिं कही ।
श्रुतिकेवलिलच्छन दच्छ गही ॥
निज आतमको दरसै परसै ।
अनुभौ रसरंग तहां बरसै ॥ १४७ ॥

दोहा ।

शब्दब्रह्मकरि जिन लख्यो, ज्ञानब्रह्म निजरूप ।
ताहीको श्रुतिकेवली, भाषतु है जिनभूप ॥ १४८ ॥

(३४)

मत्तगयन्द ।

श्रीसरवज्ञहृदम्बुधितें, उपजी धुनि जो शुचि शारद गंगा ।
सो वह पुग्गलद्रव्यमई, भइ अग उपंग अभंग तरंगा ॥

ताकहँ जो पहिचानत है, सोइ ज्ञान कहावत भावश्रुतंगा ।
सूत्रहुको गुरुज्ञान कहै, सो विचार यहां उपचार प्रसंगा १४९

(३५)

षट्पद ।

जो जाने सो ज्ञान, जुदो कछु वस्तु न जानो ।
आतम आपहि ज्ञान, धर्मकरि ज्ञायक मानो ॥
ज्ञानरूप परिनवै, स्वयं यह आतमरामा ।
सकल वस्तु तसु बोधमाहिं, निवसै करि धामा ॥
जद्यपि संज्ञा संख्यादितें, भेद प्रयोजनवश कहा ।
तद्यपि प्रदेशतें भेद नहिं, एक पिंड चेतन महा ॥१५०॥

मनहरण ।

जैसे घसिहारो घास काटै लोह दांतलेसों,
तहां करतार क्रिया साधन नियारा है ।
तैसे आतमाविषै न भेद है त्रिभेदरूप,
यहां तो प्रदेशतें अभेद निराधारा है ॥
संज्ञा संख्या लच्छन प्रयोजनतें वस्तुको,
अनन्तधर्मरूप सिद्ध साधन उचारा है ॥
गुणी गुणमाहिं जो सरवथा विभेद मानें,
तहां तो प्रतच्छ दोष लागत अपारा है ॥१५१॥

मत्तगयन्द ।

आतमको गुन ज्ञानतें भिन्न, बखानत है केई मूढ अभागे ।
दो विधि बात कहो तिनसों, वह ज्ञान विराजत है किहि जागे ॥

जो जडमें गुन ज्ञान बसै, तब तो जड़ चेतनता–पद पागे।
जीवहिंमें जो बसै गुन ज्ञान, तो क्यों तुम गाल बजावन लागे॥

मनहरण।

जैसे आग दाहक–क्रियाको करतार ताको,
उष्णगुन दाहकक्रियाको सिद्ध करै है।
तैसे आतमाकी क्रिया ज्ञायकसुभाव तासु,
ज्ञानगुन साधन प्रधानता आचैर है॥
विवहार दिष्टतें विशिष्ट है विभेद वृन्द,
निहचै सुदिष्टसों अभेद सुधा झरै है।
आप चिन्मूरत अखंड द्रव्यदृष्टि ताके,
सत्ता गुन भेदतें अनंत धारा धरै है॥१५३॥

दोहा।

निरविकल्प आतम दरव, द्रव्यदृष्टिके द्वार।
जव गुन परज विचारिये, तब वहु भेद पसार॥१५४॥
जेते वचनविकल्प है, तेते नयके भेद।
सहित अपेच्छा सिद्ध सव, रहित अपेच्छ निषेद॥१५५॥
जहा सरवथा पच्छकरि, गहत वचनकी टेक।
तहां होत मिथ्यात मत, सधत न वस्तु विवेक॥१५६॥
तातें दोनों नयनिको, दोनो नयनसमान।
जथाथान सरधानकरि, वृंदावन सुख मान॥ १५७॥
जहा अपेच्छा जासुकी, तहा ताहि करि मुख्य।
करो सत्य सरधान दिढ. स्यादवाद रस चुख्य॥१५८॥

है सामान्यविशेषमय, वस्तु सकल तिहि काल ।
सो इकंतसों सधत नहिं, दूषन लगत विशाल ॥ १५९ ॥
तातें यह चिद्रूपको, प्रनवन है गुन ज्ञान ।
ज्ञानरूप वह आप है, चिदानंद भगवान ॥ १६० ॥

(३६)

षट्पद ।

पूरवकथित प्रमान, जीव ही ज्ञान सिद्ध हुव ।
ज्ञेय द्रव्य कहि त्रिविधि, विविध विधि भेद तासु ध्रुव॥
चिदानंदमें द्रव्य, ज्ञेय दोनों पद सोहै ।
अन्य पंच जड़वर्ग, ज्ञेय पदवी तिनको है ॥
यह आतम जानत सुपरको, ज्ञान वृन्द परकाश धर ।
परिनामरूप सनबंध है, ज्ञाता ज्ञेय अनादिकर ॥१६१॥
जदपि होय नट निपुन, तदपि निजकंध चढ़ै किमि
तिमि चिनमूरति ज्ञेय, लखहु नहिं लखत आप इमि ॥
यों संशय जो करै, तासुको उत्तर दीजे ।
सुपर प्रकाशकशक्ति, जीवमें सहज लखीजे ॥
जिमि दीप प्रकाशत सुघटपट, तथा आप दुति जगमगत ।
तिमि चिदानंदगुनवृंदमें, स्वपरप्रकाशक पद पगत॥१६२॥

चौपाई ।

ज्ञेय त्रिधातमको यह अर्थ । भाषा श्रीगुरुदेव समर्थ ।
भूतअनागत वरतत जेह । परजय भेद अनंते तेह ॥१६३॥

अथवा उतपतिव्ययध्रुवरूप । तथा द्रव्यगुनपरज प्ररूप ।
सुपर ज्ञेयके जे ते भेद । सो सब जानत ज्ञान अखेद १६४॥
ज्ञानरूप अरु ज्ञेयस्वरूप । द्रव्यरूप यह है चिद्रूप ।
और पंच जड़वर्जित ज्ञान । सदा ज्ञेयपद धरै निदान१६५॥
आतमज्ञान जोतिमय स्वच्छ । स्वपर ज्ञेय तहँ लसत प्रतच्छ।
वंदों कुंदकुंद मुनिराय । जिन यह सुगम सुमग दरसाय १६६

(३७)

मनहरण ।

जेते परजाय षट्द्रव्यनके होय गये,
अथवा भविष्यत जे सत्तामें विराजै है ।
तेते सब भिन्न भिन्न सकल विशेषजुत,
शुद्ध ज्ञान भूमिकामें ऐसे छवि छाजै है ॥
जैसे ततकाल वर्त्तमानको विलोकै ज्ञान,
तैसे भगवान अविलोकै महाराजै है ।
भूतभावी वस्तु चित्रपटमें निहारै जैसे,
गहै ज्ञान ताको तैसे तहां भ्रम भाजै है ॥१६७॥

दोहा ।

वर्तमानके ज्ञेयको, जो जानत है ज्ञान ।
तामें तो शंका नहीं, देखत प्रगट प्रमान ॥ १६८ ॥
भूत भविष्यत पर्ज तो, है ही नाहीं नित्त ।
तब ताको कैसे लखै, यह भ्रम उपजत चित्त ॥ १६९ ॥

बाल अवस्थाकी कथा, जब उर करिये याद ।
तव प्रतच्छवत होत सब, यामें नाहिं विवाद ॥ १७० ॥
अथवा भावी वस्तु जे, वेदविदित सब ठौर ।
तिनहिं विचारत ज्ञान तहँ, होत तदाकृति दौर ॥१७१॥
बाहूबलि भरतादि जे, ऽतीत पुरुष परधान ।
अथवा श्रेणिक आदि जे, होनहार भगवान ॥ १७२ ॥
तिनको चित्र विलोकतै, ऐसो उपजत ज्ञान ।
जैसे ज्ञेय प्रतच्छको, जानत ज्ञान महान ॥ १७३ ॥
छदमस्थनिके ज्ञानकी, जहँ ऐसी गति होय ।
जानहि भूत भविष्यको, वर्तमानवत सोय ॥ १७४ ॥
तब जिनके आवरनको, भयौ सरवथा नाश ।
प्रगट्यो ज्ञान अनंतगत, सहजशुद्ध परकाश ॥ १७५ ॥
तिनके भूतभविष्य जे, परजै भेद अनंत ।
छहों दरबके लखनमें, शंका कहा रहंत ॥ १७६ ॥
यह सुभाव है ज्ञानको, जब प्रनवत निजरूप ।
तब जानत जुगपत जगत, त्रिविधि त्रिकालिकभूप॥१७७
ऐसे परम प्रकाशमहँ, शुद्ध बुद्ध जिमि अर्क ।
तास प्रगट जानन विषै, कैसे उपजै तर्क ॥ १७८ ॥
अपने वस्तुस्वभावमें, राजै वस्तु समस्त ।
निज सुभावमें तर्क नहिं, यह मत सकल प्रशस्त॥१७९॥

(३८)

दोहा ।

जे परजे उपजे नहीं, होय गये पुनि जेह ।
असद्भूत है नाम तसु, यो भगवान भनेह ॥ १८० ॥
ते सब केवलज्ञानमें, है प्रतच्छ गुनमाल ।
ज्यों चौवीसी थभमें, लिखी त्रिकालिक हाल ॥ १८१ ॥

(३९)

द्रुमिला ।

जिस ज्ञानविषै परतच्छ समान, भविष्यत भूत नहीं झलकै ।
परजाय छहों विधि द्रव्यनके, निहचै करके सब ही थलकै ॥
तिस ज्ञानको कौन प्रधान कहै, भवि वृंद विचार करो भलकै ।
वह तो नहि पूज पदस्थ लहै, न त्रिकालिकज्ञेय जहाँ ललकै ॥

(४०)

काव्य (मात्रा २६) ।

जो इन्द्रिनसों भये आप मनबन्ध पदारथ ।
तिनको ईहादिकन सहित. जो जानत सारथ ॥
सो जन वस्तु परोच्छ तथा. सूच्छिम नहिं जाने ।
मतिज्ञानीकी यही शकति. जिनदेव बखाने ॥ १८२ ॥

मनहरण ।

इन्द्रिनके विषय जे विराजत हैं थूलरूप,
तिनसों मिलाप जब होय तब जाने है ।

अवग्रह ईहा औ अवाय धारणादि लिये,
क्रमसों विकलपकरि ठीकता सो माने है ॥
भूतभावी परजै प्रमान औ अरूपीवस्तु,
इंद्रिनतें सर्व ये अगोचरप्रमाने है ।
जातें इन गच्छिनिको अच्छतें न ज्ञान होत,
ताहीसेती अच्छज्ञान तुच्छ ठहराने है ॥१८४॥

(४१)

अप्रदेशीकालानु प्रदेशी पंच अस्तिकाय,
मूरतीक पुग्गल अमूरतीक पॉच है ।
तिनके अनागत अतीत परजाय भेद,
नाना भेद लिये निज निज थल माच है ॥
सर्वको प्रतच्छ एक समैहीमें जाने स्वच्छ,
अतीन्द्रियज्ञान सोई महिमा अवाच है ।
बारबार बंदत पदारविंदताको वृंद,
जाको पद जानैतें न नाचै कर्मनाच है ॥१८५॥

सवैयाछन्द ।

इंद्रियजनित ज्ञानहीतें जे, मतवाले माने सरवज्ञ ।
सो तौ प्रगट विरोध बात है, पच्छ छांड़ि परखौ किन तज्ञ ॥
सूक्ष्मान्तरित दूरके द्रव्यनि,-सो न प्रतच्छ लखै अलपज्ञ ।
यातें निरावरन निरदूषित, छायक ही ज्ञानी सारज्ञ ॥१८६॥

(४२)

षट्पद ।

जो ज्ञाता परिनवै, ज्ञेयमें विकलप धारै ।
तिहिको छायकज्ञान, नाहिं यों जिन उच्चारै ॥
वह विकलपजुत वस्तु, वृंद अनुभव न करै है ।
मृगतृष्णा इव फिरत, नाहिं संतोष धरै है ॥
तातै विकलपजुतज्ञानको, नहिं छायकपदवी परम ।
यह पराधीन इन्द्रियजनित, वह सुबोध आतमधरम १८७॥

(४३)

द्रुमिला ।

भगवंत भनी जगजंतुनिको, जब कर्मउदै इत आवत है ।
तब राग विरोध विमोहि दशाकरि, नूतनबंध बढ़ावत है ॥
दिढ़ आतम जोति जगै जिनको, तिनको रस दै खिर जावत है।
नहि नूतन बंध बंधै तिनको, इमि श्रीगुरुवृंद बतावत है१८८॥

(४४)

मनहरण ।

तिन अरहंतनिके इच्छाविना क्रिया होत. कायजोग बैठन उठन डग भरनो । दिव्यध्वनि धारासों दुधारा धर्म भेद भनै, ताहीपै सुधारा भवपारावार तरनो ॥ मायाचार नारिनिमैं नारिवेद-उदै जैसे. केवलीनि तैसे औदयिकक्रिया वरनो । देखो ! मेघमाला नाद करत रसाला उठि. चलत विसाला जैसे तहाँ पर धरनो ॥ १८९ ॥

अवग्रह ईहा औ अवाय धारणादि लिये,
क्रमसों विकल्पकरि ठीकता सो माने है ॥
भूतभावी परजै प्रमान औ अरूपीवस्तु,
इंद्रिनतें सर्व ये अगोचरप्रमाने है ।
जातें इन गच्छिनिको अच्छतें न ज्ञान होत,
ताहीसेती अच्छज्ञान तुच्छ ठहराने है ॥१८४॥

(४१)

अप्रदेशीकालानु प्रदेशी पंच अस्तिकाय,
मूरतीक पुग्गल अमूरतीक पाँच है ।
तिनके अनागत अतीत परजाय भेद,
नाना भेद लिये निज निज थल माच है ॥
सर्वको प्रतच्छ एक समैहीमें जाने स्वच्छ,
अतीन्द्रियज्ञान सोई महिमा अवाच है ।
वारबार बंदत पदारविंदताको वृंद,
जाको पद जानैतें न नाचै कर्मनाच है ॥१८५॥

सवैयाछन्द ।

इंद्रियजनित ज्ञानहीतें जे, मतवाले माने सरवज्ञ ।
सो तौ प्रगट विरोध बात है, पच्छ छांड़ि परखौ किन तज्ञ ॥
सूक्ष्मान्तरित दूरके द्रव्यनि,-सो न प्रतच्छ लखै अलपज्ञ ।
यातें निरावरन निरदूषित, छायक ही ज्ञानी सारज्ञ ॥१८६॥

(४२)

षट्पद ।

जो ज्ञाता परिनवै, ज्ञेयमें विकलप धारै ।
तिहिको छायकज्ञान, नाहिं यों जिन उचारै ॥
वह विकलपजुत वस्तु, वृंद अनुभव न करै है ।
मृगतृष्णा इव फिरत, नाहिं संतोष धरै है ॥
तातै विकलपजुतज्ञानको, नहिं छायकपदवी परम ।
यह पराधीन इन्द्रियजनित, वह सुबोध आतमधरम१८७॥

(४३)

द्रुमिला ।

भगवंत भनी जगजंतुनिको, जब कर्मउदै इत आवत है ।
तब राग विरोध विमोहि दशाकरि, नूतनबंध बढ़ावत है ॥
दिढ़ आतम जोति जगै जिनको, तिनको रस दै खिर जावत है।
नहिं नूतन बंध बँधै तिनको, इमि श्रीगुरुवृंद बतावत है१८८॥

(४४)

मनहरण ।

तिन अरहंतनिके इच्छाविना क्रिया होत, कायजोग बैठन उठन डग भरनो । दिव्यध्वनि धारासों दुधारा धर्म भेद भनै, ताहीके अधारा भवपारावार तरनो ॥ मायाचार नारिनिमें नारिवेद—उदै जैसे, केवलीके तैसे औदयिकक्रिया वरनो । देखो ! मेघमाला नाद करत रसाला उठि, चलत विशाला तैसे तहाँ उर धरनो ॥ १८९ ॥

दोहा ।

प्रश्नः—पूछत शिष्य विनीत इत, विन इच्छा भगवान ।
दिच्छा शिच्छा देत किमि, उठत चलत थितिठान ॥१९०

उत्तरः—सुविहायोगत कर्म है, चलन–फिरनको हेत ।
सोई निज रस दै खिरत, उठत चलत थिति लेत ॥१९१॥

विन इच्छा जिमि चलत है, मेघ पवनके जोग ।
आरज श्रीअरहंत तिमि, विहरहिं कर्म–नियोग ॥ १९२॥

भाषा–प्रकृति उदोत लगु, वानी खिरत त्रिकाल ।
स्वतः अनिच्छा रूपतै, तहां अलौकिक चाल ॥ १९३ ॥

रसन दशन हालै न कछु, लगत न ओठ लगार ।
विकृति होत नहिं अंगको, महिमा अपरंपार ॥ १९४ ॥

अष्ट स्थानकतै वरन[1], उपजत संजुतशोर ।
जिनध्वनि वर्जित तासतैं, जथा मेघ घनघोर ॥ १९५ ॥

सो जब तहां पुनीत जन, पूछहिं सन्मुख आय ।
दिव्यध्वनि तब खिरत है, निमित तासुको पाय ॥१९६॥

निमित और नैमितकको, बन्यो बनाव अनाद ।
सब मत मानत बात यह, यामें नाहिं विवाद ॥ १९७॥

चिंतामनि अरु कल्पतरु, ये जड़ प्रगट कहाहिं ।
मनवांछित संकल्प किमि, सिद्धि करहिं पलमाहिं ॥ १९८

---

१ वर्ण–अक्षर ।

पारस निज गुन देत नहिं, नहिं परऔगुन लेत।
किमि ताको परसत तुरत, लोह कनकछवि देत ॥१९९॥
इच्छारहित अनच्छरी, ऐसे जिनधुनि होय।
उठन चलन थितिकरनमें, यहा न संशय कोय ॥२००॥

(४९)

मनहरण।

पुण्यहीको फल है शरीर अरहंतनिको, फेरि तिन्है सोई कर्म उदै जब आवै है। तबै काय वैन जोग क्रियाको उदोत होत, जथा मेघ बोलै डोलै वारि वरसावै है॥ जातै मोहआदिको सरवथा अभाव तहाँ, तातै वह क्रिया वृंद छायकी कहावै है। पूर्ववंध खिरो जात नूतन न वंधे पात, छायकीको ऐसोई सुभेद वेद गावै है॥ २०१ ॥

चौपाई।

चार भांति करि वंध विभागा। प्रकृति, प्रदेश, स्थिति, अनुभागा।
जोगद्वारतै प्रकृति प्रदेशा। थिति अनुभाग मोहकृत भेषा॥
जहा मूलतै मोह विनाशै। तहँ किमि थिति अनुभाग प्रकाशै।
पूरववंध उदै जो आवै। सो निज रस दैके खिरि जावै॥

दोहा।

भानु वसत आकाशमें, जलमें जलज वसंत।
किमि ताको अवलोकते, विकसित होत तुरत ॥ २०४ ॥
अस्त गभस्त विलोकते, चकवा तिय तजि देत।
लखहु निमित नैमतिकको, प्रगट अनाहत हेत ॥२०५॥

तैसे पुण्यनिधानके, प्रश्न होत परमान ।
जिनधुनि खिरत अनच्छरी, इच्छारहित महान ॥ २०६॥
जैसे शयनदशाविषै, कोउ करि उठत प्रलाप ।
विनु इच्छा तसु वचन तहँ, खिरत आपतै आप ॥ २०७
जब इच्छाजुतको वचन, खिरत अनिच्छा येम ।
तब सो वचनखिरनविषै, इच्छाको नहिं नेम ॥ २०८ ॥
चिंतामनि सुरवृच्छतै, गुनित अनंतानंत ।
शक्ति सुखद जिनदेहमें, सहज सुभाव लसंत ॥ २०९ ॥
जैसी जिनकी भावना, तैसी तिनकों दीस ।
धुनि धारासों विस्तरत, इन्द्र धरत सत शीस ॥ २१० ॥
अब जिहिविधि वरनातमक, होत सुधारण धार ।
ताको सुनि शरधा करो, ज्यों पावो भवपार ॥ २११ ॥
श्रीगनधर वर रिद्धिधर, सुनहिं सुधुनि अमलान ।
तिनहूकी मतिमें सकल, बानी नाहिं समान ॥ २१२ ॥
जेतो मतिभाजन तितो, वयॅन[1] गही गनईश ।
वीस अंक परमान श्रुति, रची ताहि नुतशीस ॥ २१३ ॥
ताहीके अनुसार पुनि, और सुगुरु निरग्रंथ ।
रचना जिनसिद्धातकी, रचहिं सुखद शिवपंथ ॥ २१४ ॥

चौपाई ।

आतमराम शुद्ध उपयोगी । अमल अतिंद्री आनँदभोगी ।
तिनकी क्रिया छायकी वरनी । वृंदावन वंदत भवतरनी ॥

---

१ वचन ।

(४६)

माधवी ।

जदि आतम आप सुभावहितै, स्वयमेव शुभाशुभरूप न होई।
तदि तौ न चहै सब जीवनिके, जगजाल दशा चहिये नहिं कोई ॥
जब बंध नहीं तब भोग कहा, जो बँधै सोई भोगवै भोग तितोई ।
यह पच्छ प्रतच्छ प्रमानतै साधते, खंडन सांख्यमतीनिकी होई॥

छन्दसवैया—(साख्यमतीका लक्षण ।)

साख्य कहै संसारविषै थित, जीव शुभाशुभ करै न भाव ।
प्रकृति करै करमनिको ताकौ, फल भुगतै चिन्मूरति—राव ॥
तहा विरोध प्रगट प्रतिभासत, विना किये कैसे फल पाव ।
जातै जो करता सो भुक्ता, यही राजमारगको न्याव ॥ २१७

(४७)

अशोकपुष्पमजरी ।

वर्तमान कालके गुनौ समस्त पर्ज वा, भविष्यभूतकालके जिते अनंतनंत है । सव्व दव्वके सवंग जे विचित्रता तरंग अतरंग चिन्ह भिन्न भिन्न सो दिपंत है ॥ एक ही समै सु एक वार ही लख्यौ तिन्है प्रतच्छ अतरग छेद स्वच्छता धरंत है। छायकीय ज्ञान है यही त्रिलोकवंद वृंद जो समौ विषम्यमें समान भासवत है ॥ २१८ ॥

(समविषमकथन)—मनहरण ।

कोऊ द्रव्य काहूके समान न विराजत है, याहीतै विषम

सो बखानै गुरु ग्रंथमें। मति श्रुति औधि मनपर्जके विषय तेऊ, विषम कहावत छयोपशम पंथमें॥ सर्व कर्म सर्वथा विनाशिके प्रतच्छ स्वच्छ, छायक ही ज्ञान सिद्ध भयौ श्रुति मंथमें। सोई सर्व दर्वको विलोकै एकै समैमाहिं, महिमा न जासकी समात ग्रंथकंथमें॥ २१९॥

(४८)

मनहरण।

तीनोंलोकमाहिं जे पदारथ विराजैं तिहूं,–कालके अनंतानंत जासुमें विभेद है। तिनको प्रतच्छ एक समैहीमें एकै बार, जो न जानि सकै स्वच्छ अंतर उछेद है॥ सो न एक दर्वहूको सर्व परजायजुत, जानिवेकी शक्ति धरै ऐसे भने वेद है। तातै ज्ञान छायककी शक्ति व्यक्त **वृंदावन**, सोई लखै आप–पर सर्वभेद छेद है॥ २२०॥

(४९)

मत्तगयन्द।

जो यह एक चिदातम द्रव्य, अनन्त धरै गुनपर्यय सारो।
ताकहँ जो नहिं जानतु है, परतच्छपने सरवंग सुधारो॥
सो तब क्यों करिकै सब द्रव्य, अनंत अनंत दशाजुत न्यारो।
एकहि कालमें जानि सकै यह, ज्ञानकी रीतिको क्यों न विचारो॥

मनहरण।

घातिकर्म घातके प्रगट्यो ज्ञान छायक सो, दर्वदिष्टि

---

१ अवधिज्ञान। २ ग्रंथरूपी कंथामें–वस्त्रमें।

देखते अभेद सरवंग है। ज्ञेयनिके जानिवेतै सोई है अनंत रूप, ऐसे एक औ अनेक ज्ञानकी तरंग है॥ तातै एक आतमाके जानेहीतै **वृन्दावन,** सर्व दर्व जाने जात ऐसोई प्रसंग है। केवलीके ज्ञानकी अपेच्छातै कथन यह, मथन करी है कुंदकुंदजी अभंग है॥ २२२॥

(५०)

अरिल्ल।

जो ज्ञाताको ज्ञान अनुक्रमको गही।
वस्तुनिको अवलंबत उपजत है सही।
सो नहिं नित्य न छायक नहिं सरवज्ञ है।
पराधीन तसु ज्ञान सो जन अलपज्ञ है॥२२३॥

(५१)

मनहरण।

तिहूंकालमाहिं नित विषम पदारथ जे, सर्व सर्वलोकमें विराजे नाना रूप है। एकै वार जानै फेरि छाडै नाहिं संग ताको, सैंगकी सी रेखा तथा सदा संगभूप है॥ अमल अचल अविनाशी ज्ञानपरकाश, सहजसुभाविकसुधारसको कूप है। श्रीजिनिंदेवजूके ज्ञान गुन छायककी, अहो भविवृन्द यह महिमा अनूप है॥ २२४॥

कोऊ मूरतीक कोऊ मूरतिरहित द्रव्य, काहुके न काय

---

१ पत्थरकी रेखा।

कोऊ द्रव्य कायवंत है । कोऊ जड़रूप कोऊ चिदानंदभूप यातै, सर्व दर्व सम नाहिं विषम अनंत है ॥ तिनके त्रिकालके अनंत गुनपरजाय, नित्यानित्यरूप जे विचित्रता धरंत है । सर्वको प्रतच्छ एक समैमें ही जानै ऐसे, ज्ञानगुन छायककी महिमा अनंत है ॥ २२५ ॥

(५२)

मनहरण ।

शुद्ध ज्ञानरूप सरवंग जिनभूप आप, सहज–सुभाव–सुखसिंधुमें मगन है । तिन्हैं परवस्तुके न जानिवेकी इच्छा होत, जातैं तहां मोहादि विभावकी भगन है ॥ तातैं पररूप न प्रनवै न गहन करै, पराधीन ज्ञानकी न कबहूं जगन है । ताहीतैं अबंध वह ज्ञान क्रिया सदाकाल, आतमप्रकाशहीमें जासकी लगन है ॥ २२६ ॥

दोहा ।

क्रिया दोइ विधि वरनई, प्रथम प्रज्ञप्ती जानि ।
ज्ञेयारथ परिवरतनी, दूजी क्रिया बखानि ॥ २२७ ॥
अमलज्ञानदरपनविषैं, ज्ञेय सकल झलकंत ।
प्रज्ञप्ती है नाम तसु, तहां न बंध लसंत ॥ २२८ ॥
ज्ञेयारथ परिवरतनी, रागादिकजुत होत ।
जैसो भावविकार तहँ, तैसो बंधउदोत ॥ २२९ ॥

पद्धतिका-पद्धडी । (अधिकारान्तमंगल ।)

ज्ञानाधिकार यह मुकतिपंथ। गुरु कथी सारश्रुतिसिंधु मंथ ॥
मुनि कुंदकुंदके जुगल पाय। **वृन्दावन** वन्दत शीस नाय ॥

इति श्रीमत्कुन्दकुन्दाचार्यकृत परमागम श्रीप्रवचनसारजीकी वृन्दावनकृतभाषामें प्रथम ज्ञानाधिकार पूरा भयौ ।

१ (क प्रतिमें) "मिती कार्तिककृष्णा १४ चौदश संवत् १९०५ बुधवारे (ख प्रतिमें) संवत् १९०६ चैत्रशुक्ला पूर्णमास्याम् मन्दवासरे ।" इस प्रकार लिखा है।

अथ द्वितीयसुखाधिकारः प्रारभ्यते ।

मगलाचरण ।

चरनकमल कमला बसत, सारद सुमुखनिवास ।
देवदेव सो देव मो, कमला वागविलास ॥ १ ॥
श्रीसरवज्ञ प्रनाम करि, कुंदकुंद मुनि वंदि ।
वरनों सुखअधिकार अब, भवि उर–भरम निकंदि ॥ २ ॥

(१)

मनहरण ।

अर्थनिकेमाहिं[1] जो अतीन्द्रीज्ञान राजत है, सोई तो अमूरतीक अचल अमल है। बहुरि जो इंद्रियजनित ज्ञान उपजत, सोई मूरतीक नाम पावत समल है ॥ ताही भांति सुखहू अतीन्द्री है अमूरतीक, इंद्रीसुखमूरतीक सोऊ न विमल है । दोऊमें परम उतकृष्ट होय गहो ताहि, सोई ज्ञान सुख शिवरमाको कमल है ॥ ३ ॥

अतीन्द्रियज्ञान सुख आतमसुभाविक है, एक रस सासतो अखंड धार बहै है । शत्रुको विनाशिके उपज्यो है अबाध-रूप, सर्वथा निजातमीक-धर्मको गहै है ॥ इंद्रीज्ञानसुख पराधीन है विनाशिक है, तातै याको हेय जानि ऐसो गुरु कहै है । ज्ञानसुखपिंड चिनमूरति है **वृंदावन**, धर्मीमें अनंत धर्म जुदे जुदे रहै है ॥ ४ ॥

---

१ पदार्थोंमें ।

(२)

जाकी ज्ञान प्रभामें अमूरतीक सर्व दर्व, तथा जे अतींद्री-गम्य अनू पुदगलके। तथा जे प्रछन्न द्रव्य क्षेत्र काल भाव चार, सहितविशेष वृंद निज निज थलके ॥ और निज आतमके सकल विभेद भाव, तथा परद्रव्यनिके जेते भेद ललके। ताही ज्ञानवंतको प्रतच्छ स्वच्छ ज्ञान जानो, जामें ये समस्त एक समैहीमें झलके ॥ ५ ॥

(३)

जीव है सुभावहीतै स्वयंसिद्ध अमूरत, द्रव्यद्वार देखते न यामें कछु फेर है। सोई फेर निश्चैसो अनादि कर्मवंध जोग, मूरतीक दीखै जैसो देहको गहे रहै ॥ ताही मूरतीकतै सुजोग मूर्त पदारथ, तिनको अवग्रहादिकतै जानते रहै। अथवा छ्योपशममन्दता भयेतै सोई, थूल मूरतीकहू न जानत किते रहै ॥ ६ ॥

दोहा।

देह धरेतै आतमा, द्रव्येंद्रिनिके द्वार।
निकट थूल मूरत दरव, तिनको जाननिहार ॥ ७ ॥
अथवा छय उपशम घंटै, निपट निकट जे वस्त।
तिनहुं न जानि सकै कभी, यह जगविदित समस्त ॥ ८ ॥
पचिन्द्रिनिके विषयको. जानि अनुभवै सोय।
इन्द्रियसुख सो जानियो, मूरतीकमें होय ॥ ९ ॥

यातै ज्ञानौ सुख दोऊ, बसहिं सदा इक संग ।
मूरतिमाहीं मूरतिक, इतरमाहिं तदरंग ॥ १० ॥
फरस रूप रस गंध अरु, श्रवनिंद्रिनिके भोग ।
ज्ञानद्वारतै जानिके, सुख अनुभव तपयोग ॥ ११ ॥
यातैं ज्ञानरु सौख्यको, अविनाभावी संग ।
चिद्विलासहीमें बसत, उपजहि संग उमंग ॥ १२ ॥
इंद्रियज्ञानरु सौख्य जिमि, मूरतीकमें जान ।
तथा अतिंद्रियज्ञान सुख, बसत अतिंद्रियथान ॥ १३ ॥
कहा कहों नहिं कहि सकों, वचनगम्य नहिं येह ।
अनुभव नयन उघारि घट, **वृंदावन** लखि लेह ॥१४॥

(जीवदशा ।) मनहरण ।

अनादितै महामोह मदिराको पान किये, ठौर ठौर करत उराहनेको काम है । अज्ञान अँधारेमें सँभारै न शकति निज, इंद्रिनिके लारे किये देहहीमें धाम है ॥ लपटि झपटि गहै मूरतीक भोगनिको, शुद्धज्ञानदशासेती भई बुद्धि वाम है । ऐसी मूरतीक ज्ञान परोच्छकी लीला **वृंद**, भाषी **कुंदकुंद** गुरु तिनको प्रनाम है ॥ १५ ॥

(४)

षट्पद ।

फरस रूप रस गंध, शब्द ये पुग्गलीक हैं ।
पंचेंद्रिनिके जथाजोग ये, भोग ठीक है ॥

सव इंद्री निजभोगन, जुगपत गहन करै है।
छय उपशम क्रमसहित, भोग अनुभवत रहै है।
ज्यों काक लखत दो नयनतैं, एक पूतली फिरनिकर।
जुगपत नव भेदि सलखि सकत, त्यो इद्रिनिकी रीति तर॥

जीव जीभके स्वादमाहि, जिहिकाल पगै है।
अन्येंद्रिनिके भोगमें न, तब भाव लगै है॥
निज निज रस सव गहै, जदपि यह सकति अच्छमहँ।
तदपि न एकै काल, सकल रस अनुभवते तहँ॥
रस वेदहिं क्रमहीसों सभी, छय उपशमकी सकति यहि।
जातैं परोच्छ यह ज्ञान है, पराधीन मूरति सु गहि॥१७॥

दोहा।

यह परोच्छ ही ज्ञानतैं, इद्रिनिको रस जान।
चिदानंद सुख अनुभवहि, जेतो ज्ञान प्रमान॥ १८॥
तातैं ज्ञानरु सुख दोउ, है परोच्छ परतत।
मूरतीक वाधासहित, यातैं हेय भनत॥ १९॥

(९)

छन्द सवैया।

जे परदरवमई है इन्द्री, ते पुद्गलके बने बनाव।
चिदानंद चिद्रूप भूपको, यामैं नाहिं कछू सुभाव॥
तिन करि जो जानत है आतम, सो किमि होय प्रतच्छ लखाव।
पराधीन तातें परोच्छ यह, इन्द्रीजनित ज्ञान दृगभाव॥२०॥

मत्तगयन्द ।

पुद्गलदर्वमई सब इंद्रिय, तासु सुभाव सदा जड़ जानो ।
आतमको तिहुंकालविषै, नित चेतनवंत सुभाव प्रमानो ॥
तौ यह इंद्रियज्ञान कहो, किहि भांति प्रतच्छ कहाँ ठहरानो ।
तातै परोच्छ तथा परतंत्र, सु इंद्रियज्ञान भनौ भगवानो ॥ २१ ॥

(६)

मनहरण ।

परके सहायतैं जो वस्तुमें उपजै ज्ञान, सोई है परोच्छ तासु भेद सुनो कानतै । जथा उपदेश वा छयोपशम लाभ तथा, पूर्वके अभ्यास वा प्रकाशादिक भानतै ॥ और जो अकेले निज ज्ञानहीतै जानै जीव, सोइ है प्रतच्छ ज्ञान साधित प्रमानतैं । जातै यह परकी सहाय विन होत वृंद, अतिंद्रिय आनंदको कंद अमलानतै ॥ २२ ॥

(७)

मनहरण ।

ऐसो ज्ञानहीको 'सुख' नाम जिनराज कह्यो, जौन ज्ञान आपने सुभावहीसों जगा है । निरावर्नताई सरवंग जामें आई औ जु, अनंते पदारथमें फैलि जगमगा है ॥ विमल सरूप है अभंग सरवंग जाको, जामें अवग्रहादि क्रियाको क्रम भगा है । सोई है प्रतच्छ ज्ञान अतिंद्री अनाकुलित, याहीतै अतिंद्रीसुख याको नाम पगा है ॥ २३ ॥

(८)

मत्तगयन्द ।

केवलनाम जो ज्ञान कहावत, है सुखरूप निराकुल सोई ।
ज्ञायकरूप वही परिनाम, न खेद कहूं तिन्हिके मधि होई ॥
खेदको कारण घातिय कर्म, सो मूलतै नाश भयो मल धोई ।
यातै अतिंद्रिय ज्ञान सोई, सुख है निहचै नहिं संशय कोई ॥२४

मनहरण ।

घातिया करम यही ज्ञानमाहिं खेद करै, जातै मोहउदै मतवालो होत आतमा । झूठी वस्तुमाहिं बुद्धि साची करि धावतु है, खेदजुत इंद्रीविषै जानै बहु भांतमा ॥ जाके घाति कर्मको सरवथा विनाश भयो, जग्यो ज्ञान केवल अनाकुल विख्यातमा । त्रिकालके ज्ञेय एकै वार चित्रभीतवत, जानै जोई ज्ञान सोई सुख है अध्यातमा ॥ २५ ॥

(९)

मत्तगयन्द ।

केवलज्ञान अनन्तप्रभातै, पदारथके सब पार गया है ।
लोक अलोकविषै जसु दिष्टि, विशिष्टपनैं विस्तार लया है ॥
सर्व अनिष्ट विनष्ट भये, अरु इष्ट सुभाव सो लाभ लया है ।
यातै अभेद दशा करिकै यह ज्ञानहिको सुख सिद्ध ठया है ॥२६

दोहा ।

जब ही घाति विघातिकै, शुद्ध होय सरवंग ।
ज्ञानादिक गुन जीवके, सोई सौख्य अभंग ॥ २७ ॥

निजाधीन जानै लखै, सकल पदारथ वृन्द ।
खेद न तामै होत कछु, केवलजोति सुछन्द ॥ २८ ॥
तातै याही ज्ञानको, सुखकरि बरनन कीन ।
भेदविविच्छा छाड़िके, कुन्दकुन्द परवीन ॥ २९ ॥

(१०)

माधवी ।

जिनको यह घातियकर्म विघातिकै, केवल जोति अनन्त फुरी है ।
सुखमें उतकिष्ट अतीद्रिय सौख्य, तिन्है सरवंग अभंग पुरी है ॥
तिसको न अभव्य प्रतीत करै, पुनि दूर हु भव्यकी बुद्धि दुरी है ।
यह बात वही शरधा धरि है, जिनके भवकी थिति आनि जुरी है ॥

दोहा ।

इन्द्रीसुखजुत मुक्ति जे, मानहिं मूढ़ अयान ।
तिनको मत शतखंड करि, श्रीगुरु हनी निशान ॥३१॥

(११)

माधवी ।

नर इंद्र सुरासुर इंद्रनिको, सहजै जब इंद्रियरोग सतावै ।
तव पीड़ित होकर गोगनको[1], नित भोग मनोगनमाहिं[2] रमावै ॥
तहाँ चाहकी दाह नवीन बढ़ै, घृतआहुतिमें जिमि आगि जगावै ।
सहजानंद बोध विलास विना, नहिं ओसके बूंदसों प्यास बुझावै ॥

---

1 इन्द्रियोंको । 2 मनोज्ञ ।

दोहा ।

स्वर्गविषै इन्द्रादिको, इंद्रियसुख भरपूर ।
सोउ खेद बाधासहित, सहजानंदतैं दूर ॥ ३३ ॥
तातैं इन्द्रीजनित सुख, हेयरूप पहिचान ।
ज्ञानानन्द अनच्छसुख, करो सुधारस पान ॥ ३४ ॥

(१२)

षटपद ।

जिन जीवनिको विषयमाहिं, रतिरूप भाव है ॥
तिनके उरमें सहज, दुःख दीखत जनाव है ॥
जो सुभावतैं दुःखरूप, इंद्री नहिं होई ।
तो विषयनिके हेत, करत व्यापार न कोई ॥
करि मीन द्विरेफ शलभ हरिन, विषयनि-वश तन परहरहिं ।
यातैं इन्द्रीसुख दुखमई, कही सुगुरु भवि उर धरहिं ॥ ३५ ॥

(१३)

मनहरण ।

संसार अवस्थाहूमें विभाव सुभावहीसों, यही जीव आप सुखरूप छवि देत है । जातैं पंच इन्द्रिनिको पायकै मनोग भोग, ताको रस ज्ञायकसुभावहीसों लेत है ॥ देह तो प्रगट जड़ पुग्गलको पिंड तामें, ज्ञायकता कहा जानो सुभाव

१ आत्मा। २ हाथी। ३ मछली। ४ भ्रमर। ५ पतंग। ६ मनोहर।

अचेत है। तातैं जक्त मुक्त दोऊ दशामाहि वृंदावन, सुखरूप भावनिको आतमा निकेत है ॥ ३६ ॥

(१४)

सर्वथा प्रकार देवलोकहूमें देखिये तो, देह ही चिदातमाको सुख नाहिं करै है। जद्यपि सुरग उतकिष्ट भोग उत्तम औ, वैक्रियक काय सर्व पुण्यजोग भरै है ॥ तहां विषयनिके विवश भयो जीव आप, आप ही सुखासुखादि भावनि आदरै है। ज्ञायक सुभाव चिदानंदकंदहीमें वृंद, तातै चिदानंद दोऊ दशा आप धरै है ॥ ३७ ॥

(१५)

चौबोला।

जिन जीवनिकी तिमिर हरनकी, जो सुभावसों दृष्टि अहै।
तौ तिनको दीपक प्रकाशतै, रंच प्रयोजन नाहिं चहै ॥
तैसे सुखसुरूप यह आतम, आप स्वयं सरवंग लहै।
तहाँ विषय कहा करहिं वृन्द जहँ, सुधा सुभाविकसिंधु बहै ॥

(१६)

मत्तगयन्द।

ज्यों नभमें रवि आपुहितैं, धरै तेज प्रकाश तथा गरमाई।
देवप्रकृत्ति उदै करिकै, इस लोकविषै वह देव कहाई ॥
ताही प्रकार विशुद्ध दशाकरि, सिद्धनिके मुनिवृन्द बताई।
ज्ञानरु सौख्य लसै सरवंग, सो देव अभंग नमों सिरनाई ३९

मनहरण।

जैसे तेज प्रभा और उष्ण तथा देवपद, तीनों ही विशे-
पनिको धरैं मारतंड है। तैसे परमातममें सुपरप्रकाशक,
अनंतशक्ति चेतन सो ज्ञानगुनमंड है॥ तथा आतमीक
तृप्ति अनाकुल थिरतासों, सहज सुभाव सुखसुधाको उमड
है। आतमानुभवीके सुभाव शिलामाहिं सो, उकीरमान जक्त-
पूज्य देवता अखंड है॥ ४०॥

दोहा।

अतिइन्द्री सुखको परम, पूरन भयो विधान।
कुन्दकुन्द मुनिको करत, वृंदावन नित ध्यान॥ ४१॥

इति श्रीमत्कुन्दकुन्दाचार्यकृत परमागमश्रीप्रवचनसारजीकी वृन्दा-
वनकृतभाषामें दूसरा सुखअधिकार पूर्ण भयो।

१ संवत् १९०५ कार्तिकसुदी ५ बुधवारके।
२ ऐसा ही पाठ प्रतिमें है।

ओंनमः सिद्धेभ्यः ।

अथ तृतीयज्ञानतत्त्वाधिकारः लिख्यते ।

मंगलाचरण । दोहा ।

वंदों श्रीसर्वज्ञपद, ज्ञानानंद सुचेत ।
जसु प्रसाद बरनन करों, इन्द्रिय सुखको हेत ॥

(१)

मत्तगयन्द ।

जो जन श्रीजिनदेव-जती-गुरु,–पूजनमाहिं रहै अनुरागी ।
चार प्रकारके दान करै नित, शीलविषै दिढ़ता मन पागी ॥
आदरसों उपवास करै, समता धरिकै ममता मद त्यागी ।
सो शुभरूपपयोग धनी, वर पुण्यको बीज बवै बड़भागी ॥ १ ॥

(२)

कवित्त (३१ मात्रा)

शुभपरिनामसहित आतमकी, दशा सुनो भवि वृन्द सयान ।
उत्तम पशु अथवा उत्तम नर, तथा देवपद लहै सुजान ॥
थिति परिमान पंच इंद्रिनिके, सुख विलसै तित विविध विधान ।
फेरि भ्रमै भवसागरहीमें, तातैं शुद्धपयोग प्रधान ॥ २ ॥

(३)

मत्तगयन्द ।

देवनिके अनिमादिक रिद्धिकी, वृद्धि अनेक प्रकार कही है ।
तौ भी अतिंद्रियरूप अनाकुल, ताहि सुभाविक सौख्य नही है ॥

यों परमागममाहिं कही गुरु, और सुनो जो तहाँ नित ही है।
देहविथाकरि भोग मनोगनिमाहिं, रमै समता न लही है ॥३॥

(४)

मत्तगयन्द।

जो नर नारक देव पशू सब, देहज दुःखविषै अकुलाहीं।
तो तिनके उपयोग शुभाशुभको, फल क्यों करिकै बिलगाहीं ॥
जातें निजातम धर्म सुधर्म, अतिंद्रिय शर्म नहीं तिनपाहीं।
तो भविवृन्द विचार करो अब, कौन विशेष शुभाशुभमाहीं ॥४॥

दोहा।

शुभपयोग देवादि फल, अशुभ दुखदफल नर्क।
शुद्धातम सुखको नहीं, दोनोंमें सपर्क ॥ ५ ॥
तब शुभ अशुभपयोगको, फल समान पहिचान।
कारजको सम देखिकै, कारन हू सम मान ॥ ६ ॥
तातें इन्द्रीजनित सुख, साधक शुभउपयोग।
अशुभपयोग समान गुरु, वरनी शुद्ध नियोग ॥ ७ ॥

(५)

मनोहरछन्द।

वज्रपानि चक्रपानि जे प्रधान उत्तमानि,
ते शुभोपयोगतें भये जु भव भोग हैं।
तिनहूके शरीर और पंच अक्षउपजको,
पुष्टपने वृद्धिते स्वादते सजोग है ॥

१ [illegible]।

लोकमें विलोकते सुखी समान भासते,
जथैव[1] जोंक रोगके विकारि रक्तको गहै ।
चाह दाहसों दहै न साम[2]भावको लहै,
निजातमीक धर्मको तहां नहीं सँजोग है ॥ ८ ॥

(६)

कवित्त (३१ मात्रा)।

जो निहचैकरि शुभपयोगतै, उपजत विविध पुण्यकी रास ।
स्वर्गवर्गमें देवनिके वा, भवनत्रिकमें प्रगट प्रकास ॥
तहां तिन्है तृष्णानल बाढत, पाय भोग-घृत आहुति ग्रास ।
जातै वृंद सुधा-समरस विन, कबहुं न मिटत जीवकी प्यास॥९॥

(७)

मनहरण ।

देवनिको आदि लै जितेक जीवराशि ते ते, विषैसुख आयुपरजंत सब चाहै है । बहुरि सो भोगनिको बार बार भोगत है, तिशना तरंग तिन्है उठत अथाहै है ॥ आगामीक भोगनिकी चाह दुख दाह बढ़ी, तासुकी सदैव पीर भरी उर माहै है । जथा जोंक रकत विकारको तब लों गहै, जौलों शठ प्राणातदशाको आय गाहै है ॥ १० ॥

(८)

कुण्डलिया ।

इंद्रियजनित जितेक सुख, तामें पंच विशेष ।

---

१ यथा एव=जैसे ही । २ साम्यभाव=समता ।

पराधीन बाधासहित, छिन्नरूप तनु भेष ॥
छिन्नरूप तनु भेष, विषम अरु बंध बढ़ावै ।
यही विशेषन पंच, पापहूमें ठहरावै ॥
तब अब को बुधिमान, चहै इंद्रीसुख गिंदी ।
तातें भजत विवेकवान, सुख अमल अतिंदी ॥ ११ ॥

(९)

मत्तगयन्द ।

पुण्यरु पापविषै नहिं भेद, कछू परमारथतैं ठहरै है ॥
जो इस भाँत न मानत है, बहिरातम बुद्धि वही गहरै है ॥
सो जन मोह अछादित होय, भवोदधि घोरविषै लहरै है ।
नाहि न वार न पार मिलै, दुखरूप चहूंगतिमें हहरै है ॥१२
जैसे शुभाशुभमें नहिं भेद, न भेद भने सुख दुःखके माहीं ।
ताही प्रकारतें पुण्य रु पापमें, भेद नहीं परमारथमाहीं ॥
जानें जग न निजातम धर्म, तहां चित चाहत ही वार सदाहीं ।
तातें सुरिंदविभिंद नरिंदकी, संपतिको चित चाहत नाहीं । १२

लोकमें विलोकते सुखी समान भासते,
जथैव[1] जोंक रोगके विकारि रक्तको गहै ।
चाह दाहसों दहै न साम[2]भावको लहै,
निजातमीक धर्मको तहां नहीं सँजोग है ॥ ८ ॥

(६)

कवित्त (३१ मात्रा) ।

जो निहचैकरि शुभपयोगतै, उपजत विविध पुण्यकी रास ।
स्वर्गवर्गमें देवनिके वा, भवनत्रिकमें प्रगट प्रकास ॥
तहां तिन्है तृष्णानल बाढत, पाय भोग-घृत आहुति ग्रास ।
जातै बूंद सुधा-समरस विन, कबहुं न मिटत जीवकी प्यास॥९॥

(७)

मनहरण ।

देवनिको आदि लै जितेक जीवराशि ते ते, विषैसुख आयुपरजंत सब चाहै है । बहुरि सो भोगनिको बार बार भोगत हैं, तिशना तरंग तिन्है उठत अथाहै हैं ॥ आगामीक भोगनिकी चाह दुख दाह बढ़ी, तासुकी सदैव पीर भरी उर माहै है । जथा जोंक रकत विकारको तब लों गहै, जौलों शठ प्राणांतदशाको आय गाहै है ॥ १० ॥

(८)

कुण्डलिया ।

इंद्रियजनित जितेक सुख, तामें पंच विशेष ।

---

१ यथा एव=जैसे ही । २ साम्यभाव=समता ।

पराधीन बाधासहित, छिन्नरूप तसु भेष ॥
छिन्नरूप तसु भेष, विषम अरु बंध बढ़ावै ।
यही विशेषन पंच, पापहूमें ठहरावै ॥
तब अब को बुधिमान, चहै इंदीसुख गिंदी ।
तातै भजत विवेकवान, सुख अमल अतिंदी ॥ ११ ॥

(९)

मत्तगयन्द ।

पुण्यरु पापविषै नहिं भेद, कछू परमारथतै ठहरै है ॥
जो इस भाँत न मानत है, बहिरातम बुद्धि वही गह रैहै ॥
सो जन मोह अछादित होय, भवोदधि घोरविषै लहरै है ।
ताहि न वार न पार मिलै, दुखरूप चहूंगतिमें हहरै है ॥१२
जैसे शुभाशुभमें नहिं भेद, न भेद भने सुख दुःखकेमाही ।
ताही प्रकारतै पुण्य रु पापमें, भेद नही परमारथठाही ॥
जातै जहां न निजातम धर्म, तहां चित चाहकी दाह सदाही ।
तातै सुरिंदहिमिंद नरिंदकी, संपतिको चित चाहत नाहीं ॥१२

पद्धतिका । (पद्धरीछद)

जे जीव पुण्य अरु पापमाहिं । माने विभेद हंकार गाहिं ॥
हेमाहनकी[1] बेड़ी समान । है बंध प्रगट दोनों निदान॥१४
परिपूरन जे धर्मानुराग । अवलबैं शुद्धपयोग त्याग ॥
ताके फलतै अहमिंद इंद । नर इंद संपदा लहै वृंद ॥१५

---

१ सुवर्ण और लोहा ।

तहाँ भोग मनोग शरीर पाय। विलसै सुख बहुविधि प्रमित आय
तित आकुलता दुःख मिटै नाहिं।तब कहो कहातै सुखी आहिं॥ १६

(१०)

मत्तगयन्द ।

जो नर या परकार जथारथ,-रूप पदारथको उर आनै ।
रागविरोधमई परिनाम, कभी परद्रव्यविषै नहिं ठानै ॥
सो उपयोग विशुद्ध धरे, सब देहज दुःखनिको नित मानै ।
आनँदकंद-सुभाव-सुधामधि, लीन रहै तिहि वृंद प्रमानै॥ १७

दोहा ।

आर्हनतै[1] दाहेन[2] विलग, खात न घनकी घात ।
त्यों चेतन तनराग विनु, दुखलव दहत न गात॥ १८ ॥
तातै मुझ चिद्रूपको, शरन शुद्धउपयोग ।
होहु सदा जातै मिटै, सकल दुखद भवरोग ॥ १९ ॥

(११)

मत्तगयन्द ।

पाप अरंभ सभी परित्यागिके, जो शुभचारितमें वरतंता ।
जो यह मोहको आदि अनादिके, शत्रुनिको नहिं त्यागत संता॥
तो वह शुद्ध चिदानँद संपति,-को तिरकालविषै न लहंता ।
याहीतै मोह महारिपुकी, रमनी दुरबुद्धिको त्यागहिं संता ॥२०

१ लोहा । २ अग्नि ।

दोहा ।

तातै साध्यसरूप है, शुद्धरूप उपयोग ।
ताके बाधक मोहको, दिढ़तर तजिबो जोग ॥ २१ ॥
जो शुभही चारित्रको, जाने शिवपदहेत ।
तो वह कबहुं न पाय है, अमल निजातम चेत ॥ २२ ॥

(१२)

हरिगीतिका ।

दरब–गुन–परजायकरि, अरहंतको जो जानई ।
घातिदल दलमल सकल, तसु अमलपद पहिचानई ॥
सो पुरुष निज नित आत,–मीक स्वरूपको जानै सही ।
तासके निहचैपनैसों, मोह नाश लहै यही ॥ २३ ॥

मनहरण ।

जैसे बारै बानीको पकायौ भयौ चामीकर, सर्वथा प्रकार होत शुद्ध निकलंक है । तैसे शुद्ध ध्यानानल जोगतै करम-मल, नासिके अमल अरहंत जू अटंक है ॥ तिनके दरबमें जु ज्ञानादि विशेषन है, तिनहीको गुन नाम भाषत निशंक है। एक समै मात्र कालके प्रमान चेतनके, पर्नतिको भेद पर-जाय सो अवंक है ॥ २४ ॥

ऐसे द्रव्य गुन परजाय अरहंतजूको, प्रथम अपाने मन-माहिं अवधारै है । पीछे निज आतमको ताही भांति जानिकै, अभेदरूप अनुभव दशा विसतारै है ॥ त्रिकालके जेते पर-

जाय गुन आतमाके, तेते एकै कालमाहिं ध्यावत उदारै है। ऐसे जब ध्याता होय ध्यावै निज आतमाको, **वृंदावन** सोई मोह कर्मको विदारै है ॥ २५ ॥

जैसे कोऊ मोतिनिको हार उर धारै ताको, भेद छांड़ि शोभाको अभेदसुख लेत है। तैसे अरहंतके समान जान आपरूप, अभेद सरूप अनुभवत सचेत है ॥ चेतना परजके प्रबाहतै अभेद ध्यावै, तथा चित्प्रकाशगुनहूको गोपि देत है। केवल अभेद आतमीक सुख वेदै तहां, करता करम क्रिया भेद न धरेत है ॥ २६ ॥

जैसें चोखे रत्नको अकंप निर्मल प्रकाश, तैसें चित्प्रकाश तहां निश्चल लहत है। जब ऐसी होत है अवस्था तब भेद छेद, चेतनता मात्र ही सुभावको गहत है ॥ मोह अंधकार तहां रहै कौनके अधार, भानुको उजास तथा तिमिर दहत है। यही है उपाय मोह बाहिनीके जीतिबेको, **वृन्दावन** ताको शरनागत चहत है ॥ २७ ॥

(१३)

माधवी।

जिस जीवके अंतरतै तिहुरंतर, दूर भया यह मोह मलाना।
निज आतमतत्त्व जथारथकी, तिनके भई प्रापति **वृंद** निधाना॥
जदि जो वह रागरु दोष प्रमाद, कुभावहुको तजि देत सयाना।
तदि सो वह शुद्ध निजातमको, निहचै करि पावत है परधाना॥

दोहा ।

यातै मोह निवारिके, पायौ करि बहु जत्न ।
आतमरूप अमोल निधि, जो चिन्तामणि रत्न ॥ २९
ताके अनुभवसिद्धके, बाधक रागरु दोष ।
इनहूंको जब परिहरै, तब अनुभवसुख पोष ॥ ३० ॥
नाहीं तो ये चोर ठग, लूटें अनुभव रत्न ।
फिर पीछे पछिताय है, तातै करु यह जत्न ॥ ३१ ॥
सावधान वरतौ सदा, आतमअनुभवमाहिं ।
रागद्वेषको परिहरो, नहिं तो ठग ठगि जाहिं ॥ ३२॥

(१४)

मनहरण ।

ताही सुविधान करि तीरथेश अरहंत, सर्व कर्म शत्रुनिको मूलतै विदारी है। तिसी भाति देय उपदेश भव्य वृंदनिको, आप शुद्ध सिद्ध होय वरी शिवनारी है ॥ सोई शिवमाला विराजतु है आज लगु, अनादिसों सिद्ध पंथ यही सुखकारी है। ऐसे उपकारी सुखकारी अरहंतदेव, मनवचकाय तिन्है वन्दना हमारी है ॥ ३३ ॥

(१५)

मनहरण ।

जीवको जो दव्वगुनपर्जविषै विपरीत, अज्ञानता भाव सोई मोह नाम कहा है। कनकके[1] खाये बउरायेके समान

---

1 धतूरा ।

होय, जथारथज्ञान सरधान नाहि लहा है ॥ ताही दृगमो[1]-हतैं अछादित हो चिदानंद, पर द्रव्यहीको निजरूप जानि गहा है । तामें रागद्वेषरूप भाव धरै धाय धाय, याहीतै जगतमें अनादिहीसों रहा है ॥ ३४ ॥

अनादि अविद्यातैं विसारि निजरूप मूढ़, परदर्व देहादि-को जानै रूप अपना । इष्टानिष्ट भाव परवस्तुमें सदैव करै, वे तो ये स्वरूप याकी झूठी है कलपना ॥ जथा नदीमाहिं पुल पानीकी प्रबलतासों, दोय खंड होत तथा भावकी जल-पना। ऐसे मोह त्रिविध त्रिकंटक सुभाव धरै, झूठी वस्तु सांची दरसावे जथा सपना ॥ ३५ ॥

(१६)

षट्पद ।

मोह भावकरि तथा, राग अरु दोष भावकर ।
जब प्रनवत है जीव, तबहि बंधन लहंत तर ॥
विविधभांतिके भेद, तासु बंधनके भाखे ।
जाके फल संसार, चतुर्गतिमें दुख चाखे ॥
तातै मोहादित्रिभावकों, सत्तासों अब छय करौ ।
है जोग यही उपदेश सुनि, भविक वृंद निज उर धरौ ॥३६

पुन । दृष्टान्त—

जथा मोहकरि अंध, वनजे[2] गज मत्त होत जब ।
आलिंगन जुतप्रीति, करिनिको[3] धाय करत तब ॥

१ दर्शन मोहिनीसे । २ जगली हाथी । ३ हस्तिनी ।

तहां और गज देखि, द्वेषकरि सनमुखधावत ।
तृणछादित तब कूपमाहिं, परि संकट पावत ॥
यह मोह राग अरु द्वेष पुनि, बंध दशाको प्रगट फल ।
गजपर निहारि निजपरपरखि, तजहु त्रिकंटक मोह मल॥३७

दोहा ।

तातैं इस उपदेशकौ, सुनो मूल सिद्धंत ।
मोह राग अरु द्वेषकौ, करौ भली विधि अंत ॥ ३८ ॥

(१७)

द्रुमिला ।

अजथारथरूप पदारथको, गहिकैं निहचै सरधा करिवो ।
पशुमानुषमें ममता करिकै, अपने मनमें करुना धरिवो ॥
पुनि भोगविषैं मह इष्ट अनिष्ट, विभावप्रसंगनिको भरिवो ।
यह लच्छन मोहको जानि भले, मिल्यौ जोग है जोग इन्है हरिवो॥

दोहा ।

तीन चिह्न यह मोहके, सुगुरु दई दरसाय ।
'वृन्दावन' अब चूक मति, जड़तै इन्है खपाय ॥ ४० ॥

(१८)

मनहरण ।

परतच्छ आदिक प्रमानरूप ज्ञानकरि. सरवज्ञकथित जो आगमतै जानै है । सत्यारथरूप सर्व पदारथ 'वृंदावन' ताको सरधान ज्ञान हिरदैमें आनै है ॥ नेमकरि ताको मोह

संचित खिपत जात, जाको भेद विपरीत अज्ञान विधानै है ।
तातै मोह शत्रुके विनासिवेको भलीभांति, आगम अभ्यासिवो
ही जोगता वखानै है ॥ ४१ ॥

(१९)

मनहरण ।

सर्व दर्वमाहि गुन परजाय राजत हैं, तहां गुन सदा
संग वसत अनत है । क्रमकरि वर्तत कहावै परजाय सोई,
इन तिनहूको नाम अरथ अनंत है ॥ तामें गुन पर्जको
जो सरव अधारभूत, ताहीको दरव नाम भाषी भगवंत है ।
येही तीनों भेदरूप आतमा विलोकौ वृंद, जैसे **कुंदकुंद**-
जीने भाषी विरतंत है ॥ ४२ ॥

द्रव्य गुन पर्जको कहावत अरथ नाम, तहां गुन पर्ज करै
द्रव्यमें गमन है । तथा द्रव्य निज गुनपर्जमें गमन करै, ऐसे
'अर्थ' नाम इन तीनोंको अमन है ॥ जैसे हेम निज गुन
पर्जमे रमन करै, गुन परजाय करें हेममें रमन है। ऐसो भेदा-
भेद निजआतममें जानो वृंद, स्यादवाद सिद्धांतमें दोषको
दमन है ॥ ४३ ॥

दोहा ।

यातै जिन सिद्धांतको, करो भले अभ्यास ।
मिटै मोहमल मूलतै, होय शुद्ध परकास ॥ ४४ ॥

(२०)

षट्पद ।

जो जन श्रीजिनराजकथित, उपदेश पाय करि ।
मोह राग अरु द्वेष, इन्है घातै उपाय धरि ॥
सो जन उद्यमवान, बहुत थोरे दिनमाही ।
सकल दुःखसों मुक्त, होय भवि शिवपुर जाही ॥
यातैं जिनशासन कथनका, सार सुधारस पीजिये ।
वृंदावन ज्ञानानंदपद, ज्यों उतावली लीजिये ॥ ४५ ॥

(२१)

मनहरण ।

आतमा दरव ही है ज्ञानरूप सदा काल, ज्ञान आतमीक यह आतमा ही आप है। ऐसी एकताई ज्ञान आतमकी **वृंदावन**, ताको जो प्रतीति प्रीति करै जपै जाप है ॥ तथा पुग्गलादिको सुभाव भलीभांति जानै, जानै भेद जैसे जीव कर्मको मिलाप है । सोई भेदज्ञानी निजरूपमें सुथिर होय, मोहको विनासै जातै नसै तीनों ताप है ॥ ४६ ॥

(२२)

तातै जिन आगमतै द्रव्यको विशेष गुन, जथारथ जानो भले भेदज्ञान करिकै । तामें निज आतमके गुन निजमाहिं जानो, परगुन भिन्न जानो भर्मभाव हरिकै ॥ नाना दीप जोत एक भौनमें भरे है पै, नियारे सर्व तैसे सर्व दर्व भिन्न

भरिकै । जो तू मोह नासिके अबाध सुख चाहै तौ तो, आपहीमें आप देख ऐसे ध्यान धरिकै ॥ ४७ ॥

दोहा ।

दरवनिमें दो भांतिके, गुन वरतंत सदीव ।
है सामान्यस्वरूप इक, एक विशेष अतीव ॥ ४८ ॥
तामें आतमरसिक जन, गुन विशेष उरधार ।
द्रव्यनिको निरधार करि, सरधा धरै उदार ॥ ४९ ॥
एकछेत्रअवगाहमें, है षड्द्रव्य अनाद ।
निज निज सत्ताको धरै, जुदे जुदे मरजाद ॥ ५० ॥
ज्योंका त्यों जानों तिन्है, तामेंसों निजरूप ।
भिन्न लखौ सब दर्वतै, चिदानंद चिद्रूप ॥ ५१ ॥
ताके अनुभवरंगमें, पगो 'वृंद' सरवंग ।
मोह महारिपु तुरत तब, होय मूलतै भंग ॥ ५२ ॥

(२३)

मनहरण ।

सत्ता सनबंध दोय भांति है दरवमाहिं, सामान्य विशेष जो कुतर्कसों अबाध है । जैसे वृच्छजातितै समान सर्व वृच्छ और, आमनिंब आदितै विशेषता अगाध है ॥ तैसें सत्ता भावकरि सव्व दव्व अस्ति औ, विशेष सत्ता लियै सब जुदे निरुपाध है । साधु होय याको जो न निहचै प्रतीत करै, ताकों शुद्ध धर्मको न लाभ सो न साध है ॥ ५३ ॥

नरेन्द्र।

यों सामान्य-विशेष-भावजुत, दरवनिको नहिं जानै।
स्वपरभेदविज्ञान विना तब, निज निधि क्यों पहिचानै॥
तो सम्यक्त भाव विनु केवल, दरवलिंगको धारी।
तप संजमकरि खेदित हो है, वरै नाहिं शिवनारी॥५४॥

मनहरण।

जैसें रजसोधा रज सोधत सुवर्न हेत, जो न ताहि सोना-को पिछान उरमाहीं है। तौ तो खेद वृथा तैसें यहा भेदज्ञान विनु, सुपर पिछानै मुनिमुद्रा जे धराहीं है॥ तप संजमादिक कलेश करै कायकरि, सो तो शुद्ध आतमीक धर्म न लहाही है। ताके भावरूप मुनिमुद्रा नाहिं वृंदावन, ऐसे कुंदकुंद स्वामी विदित कहा ही है॥ ५५॥

चौपाई।

प्रथमहिं श्रीगुरुदेव कहा था। "[1]उवसपयामी सम्मं" गाथा।
ताकरि साम्यभाव शिव कारन। यह निहचै कीन्हों उर धारन॥
फिर कहि सुगुरु सुहित अभिलाषा।"[2]चारित्तं खलुधम्मो" भाषा।
जोई सामभाव थिर पर्म। शुद्धपयोगरूप सो धर्म॥ ५७॥
पुनि गुरुदेव कही करि करुना।'[3]परिणमदि जेण दव्व'विवरुना।
ताकरि सामभाव सोई आतम। अति एकतामई परमातम॥५८
फिर गुरु दीनदयाल उदारा। '[4]धम्मेण परिणदप्प' उचारा।

१–चौथा गाथा। २–७ वा। ३–८ वा गाथा ४–ग्यारहवा गाथा।

ताकरि सिद्ध कियो पद पर्म । साम्य शुद्ध उपयोग सुधर्म॥५९
इहि विधि शुद्ध धरम परशंसा । शुभ औ अशुभपयोग विध्वंसा ।
परम अतिन्द्री ज्ञानानंदा । निज स्वरूप पायो निर्द्वंदा ॥ ६०
अति हि अनाकुल अचल महा है । शुद्धधर्म निजरूप गहा है॥
तहाँ अकंप जोति निज जागै । **वृंदावन** तासों अनुरागै ॥६१॥

(२४)

मनहरण ।

जाने मोहदृष्टिको विशिष्टपने घातकरि, पायो निजरूप भयो सांचो समकिती है । सरवज्ञभाषित सिद्धांतमें प्रवीन अति, जथारथ ज्ञान जाके हियेमें जगती है ॥ वीतराग चारितमें सदा सावधान रहै, सोई महामुनि शिवसाधक सुमती है। ताही भावलिंगी मुनिराजको धरम नाम, विशेषपनैंतै कह्यो सोई शुद्ध जती है ॥ ६२ ॥

अनेकातरूप जिनराजको शबद ब्रह्म, होउ जयवंत जामें साचो शिवपंथ है । अनादिकी मोह-गांठि भेदके किनोर करै, आतमस्वरूप जहां पावै भ्रम मंथ है ॥ शुद्ध उपयोग पर्म धर्म जामें लाभ होत, छूटै जातै सर्व कर्मबंधनको कंथ है । **वृंदावन** वंदत मुनिंद कुंदकुंदजूको, सेवै शिव होत **प्रवचनसार** ग्रंथ है ॥ ६३ ॥

दोहा ।

वंदों श्रीजिनराजपद, शुद्ध चिदानदकंद ।
ज्ञानतत्त्वअधिकार यह, पूरन भयो अमद ॥ ६४ ॥

इति श्रीमत्कुन्दकुन्दाचार्यकृत परमागमश्रीप्रवचनसारजीकी वृन्दा-
वनअग्रवाल गोइलगोत्री काशीवासिकृत भाषामे तीसरा
ज्ञानतत्त्व अधिकार सम्पूर्ण भया ।

संवत् १९०५ कार्तिकशुक्ला द्वादशी बुधवासरे वृन्दावनने लिखी, प्रथम प्रति है, सो जयवंती वरतौ । श्रीरस्तु ।

---

१ दूसरी प्रतिमें भी इसी प्रकार लिखा है ।

ओ नमः सिद्धेभ्य

अथ चतुर्थ—ज्ञेयतत्त्वाधिकारः ।

तत्र इष्टदेववन्दना ।

दोहा ।

वन्दों श्रीसर्वज्ञ जो, वर्जित सकलविकार ।
विघनहरन मंगलकरन, मनवाछित-दातार ॥ १ ॥
ज्ञेयतत्त्वके कथनका, अब अधिकार अरंभ ।
श्रीगुरु करत दयालचित, त्यागि मोह मद दंभ ॥ २ ॥
कुंदकुंद गुरुदेवके, चरनकमल सिर नाय ।
वृंदावन भाषा लिखत, निज परको सुखदाय ॥ ३ ॥

(१)

मनहरण ।

जेते ज्ञानगोचर पदारथ है तेते सर्व, दर्व नाम निहचैसों पावै सरवंग है । फेरि तिन द्रव्यनिमें अनंत अनंत गुण, भाषे जिनदेव जाके वचन अभंग है ॥ पुनि सो दरव और गुननिमें **वृंदावन,** परजाय जुदी जुदी वसै सदा संग है । ऐसी दोई भांति परजायको न जानै जोई, सोई मिथ्यामती परसमयी कुढंग है ॥ ४ ॥

विशेषवर्णन—दोहा ।

ज्ञेय पदारथ है सकल, गुन—परजैसंजुक्त ।
तातै दरव कहावही, यह जिनवरकी उक्त ॥ ५ ॥

गुन कहिये विस्तारकों, जो चौड़ाईरूप।
संग वसत नित दरवके, अविनाभावसरूप ॥ ६ ॥
परजैकों आयत कहै, ज्यों लम्बाई होय।
घटै बढ़ै क्रमसों रहै, भेद तासुके दोय ॥ ७ ॥
एक दरव परजाय है, गुनकी परज दुतीय।
दो दो भेद दुहूनमें, सुनो समरसी जीय ! ॥ ८ ॥

अथ पर्यायभेदकथन—मनहरण।

दर्वकी परज दोय भांति यों कथन करी, एक है समान-जाति दूजी असमान है। पुग्गलानु अनेकको खंध सो समान-जाति, जीव पुदगल मिलें असमानवान है ॥ गुनहूकी दोय परजाय एक सुभाविक, षटगुनी हानि—वृद्धि जथा जोग ठान है। दूसरो विभाव वरनादि गुन खंधविषै, ज्ञानादिक पुग्गलके जोग ज्यों मलान है ॥ ९ ॥

वस्त्रहीको पाट जोडें होतु है समानजाति, तथा पुग्गलानु मिलें खंध परजाय है। रेशमी कपासी मिलें होत असमान चीर, तथा देह जीव पुदगल मिले पाय है ॥ जथा वस्त्र सेत है सुभाव गुन परजाय, तथा षटगुनी हानि—वृद्धि भेद गाय है। परके प्रसंगसे तरंग ज्यों विभाव त्यों ही, ज्ञानादि परके संग विभाव कहाय है ॥ १० ॥

कवित्त। (३० मात्रा)

इहि विधि दरवनिके गुन परजै, भनी जिनागममें तहकीक।
भेदज्ञानकरि भविक वृंद दिढ़, सरधा रुचिसों धरै अधीक ॥

मिथ्यामती न जानै याकों, एक एक नय गहै अठीक ।
शिवहित हेत अफल करनी तसु, "पीटै मूढ़ सांपकी लीक" ११

(२)

षट्पद ।

जे अज्ञानी जीव, देहहीमें रति राचे ।
अहंकार ममकार धरे, मिथ्यामद माचे ॥
तिनहीको परसमय नाम, भगवंत कहा है ।
अरु जो आतमभावविषै, लवलीन रहा है ॥
तिन आतमज्ञानी जीवको, स्वसमयरत जानो सही ।
वह चिद्विलास निजरूपमें, रमत वृंद निज निधि लही ॥ १२ ॥

मनहरण ।

अनादि अविद्यातै आच्छादित है सांचो ज्ञान, असमान देहहीको जानै रूप अपना । नाना निंद्यक्रियामाहिं अहं-ममकार करै, सोई परसमै ताकी झूठी है जलपना ॥ जिनके स्वरूपज्ञान भयो है जथारथ औ, मिटी मोह राग दोष-भावकी कलपना । एकरूप ज्ञानजोति जगी है अकंप जाके, सोई स्वसमयको न भवाताप तपना ॥ १३ ॥

(३)

काव्य ।

जो स्वभाव नहिं तजे, सदा अस्तित्व गहै है ।
औ उतपत व्यय ध्रौव्य,—सहित सब काल रहै है ॥

पुनि अनंतगुणरूप, तथा जो परज नई है।
ताहीको गुरुदेव, दरव यह नाम दई है ॥ १४ ॥

सोरठा।

गुन है दोय प्रकार, इक सामान्य विशेष इक।
सुनि समुझो निरधार, सरधा धरि भवदधि तरो ॥ १५॥

मनहरण।

अस्ति नास्ति एकानेक द्र्व्वत्त[1] परजवत्त[2], सर्वासर्वगत सप्रदेशी अप्रदेशी है। मूरत अमूरत सक्रिया औ अक्रिया-वान, चेतन अचेतन सकर्त्ता कर्त्ता तेसी है ॥ भोगता अभोगता अगुरुलघु ए समान, दर्वनिके गुन वृंद गुरु उपदेशी है। अवगाह गति थिति वर्तना मूरतवत, चेतनता गुन कहे लच्छन विशेषी है ॥ १६ ॥

दोहा।

दरवनिके अरु गुननिके, परनतिके जे भेद।
सो परजाय कहावई, समुझो भवि भ्रमछेद ॥ १७ ॥

मनहरण।

उतपाद वैय[3] ध्रुव[4] गुन परजाय यही, लच्छनको धरै द्रव्य लच्छ नाम पावै है। ताहि उतपादादि औ गुन परजायहीतै, लखिये है यातै यह लच्छन कहावै है ॥ करतार[5] सार्धन[6] अँधार[7] दर्व इनको है, इन विना द्रव्यहू न सिद्धिता लहावै है।

---

१ द्रव्यत्व—द्रव्यपना। २ पर्यायवत्व—पर्यायपना। ३ व्यय—नाश। ४ ध्रौव्य। ५ कर्त्ता। ६ करण। ७ अधिकरण।

लच्छ[1] और लच्छनमें जद्यपि विविच्छाभेद, तथापि स्वरूपतै अभेद ठहरावै है ॥ १८ ॥

(४)

दर्वका सरवकालमाहि असतित्व सोई, निहचैसों मूल-भूत सहज सुभाव है। सोई निज गुण औ स्वकीय नाना पर्जकरि, औ उतपाद व्यय ध्रौवता लहाव है॥ करतार साधन अधार दर्व इनको है, इन विना द्रव्यहू न सिद्धिताकों पाव है। द्रव्य-छेत्र-काल-भावकरि सदा एक ही है, साधिवेके हेत लच्छ लच्छन जनाव है ॥ १९ ॥

जैसे द्रव्य-छेत्र-काल-भावकरि कंचनतै, पीततादि गुन पैर्ज[2] कुंडल न जुदै है। करतार साधन अधार याको हेम[3] ही है, जातै हेमसत्ता विना इनको न उदै है । कुंडलको नाश उतपाद होत कंकनको, हेमद्रव्य ध्रौव्य गुन पीतादि समुदै है । तैसे सर्व दर्व निज गुन परजाय तथा, उतपाद व्यय ध्रुव सहित प्रमुदै है ॥ २० ॥

दोहा।

दरव स्वगुनपरजायकरि, उतपत-वय-धुव-जुत्त ।
रहत अनाहतरूप नित, यही स्वरूपास्तित्त[4] ॥ २१ ॥
पर दरवनिके गुन परँज[5], तिनसों मिलतौ नाहिं ।
निज स्वभावसत्ताविषै, प्रनमन सदा कराहिं ॥ २२ ॥

१ जिसका लक्षण किया जावे । २ पर्याय । ३ सुवर्ण-सोना । ४ स्वरूपास्तित्व । ५ पर्याय ।

(५)

मनहरण ।

नाना परकार यहां लच्छनके भेद राजै, तामें एक सत सर्व दर्वमाहिं व्यापै है । ऐसे सरवज्ञ वस्तुको स्वभाव धर्म कह्यो, जो सरव दर्वको सदृशकरि थापै है ॥ जैसे वृच्छ जातिकी सदृश और सत्ता और, लच्छन विशेषकरि जुदी २ तापै है । मुख्य गौन द्वारतैं अदोष वृंद सर्व सधै, सामान्य विशेष धर्मधारी दर्व आपै है ॥ २३ ॥

दोहा ।

सहजस्वरूपास्तित्वकरि, जुदे जुदे सब दर्व ।
निज निज गुन लच्छन धरै, है विचित्र गति पर्व ॥२४॥
अरु सादृश्यास्तित्वकरि, सब थिर थपन अवाध ।
सत लच्छनके गहनतैं, यही एक निरुपाध ॥ २५ ॥
तिहूँकालमें जासको, वाधा लगै न कोय ।
सोई सतलच्छन प्रवल, सब दरवनिमें होय ॥ २६ ॥

(६)

मनहरण ।

अपने सुभावहीसो स्वयसिद्ध द्रव्य नित, निजाधार निजगुणपरजको मूल है । सोई है सत्तास्वरूप ऐसे जिन-भूप कथो, तत्त्वभूत वस्तुको स्वभाव अनुकूल है ॥ द्रव्यको स्वभावरूप सत्ता गुन 'वृंदावन, प्रदेशतें भेद नाहिं दोऊ

समतूल है । आगम प्रमान जो न करै सरधान याको, सोई परसमयी मिथ्याती ताकी भूल है ॥ २७ ॥

दोहा ।

जदपि जीव पुदगल मिले, उपजहिं बहु परजाय ।
तदपि न नूतन दरवकी, उतपति वरनी जाय ॥ २८ ॥

मनहरण ।

द्रव्य गुनखान तामें सत्ता गुन है प्रधान, गुनी गुनको यहां प्रदेशभेद नाहीं है । संज्ञा संख्या लच्छन प्रयोजनतै द्रव्यमाहिं, कथंचित भेद पै न सर्वथा कहाहीं है ॥ दंडके धरेतै जैसे दंडी तैसे यहां नाहिं, यहांतो स्वरूपतै अभेद ठहराही है । दर्वको सुभाव है अनंत गुनपर्जवंत, ताको सांचो ज्ञान भेदज्ञानी वृंदपाहीं है ॥ २९ ॥

जब परजायद्वार दरव विलोकिये तौ, गुनी गुन भेदनिकी उठत तरंग है । और जब दर्वदिष्ट देखिये तौ गुनीगुन, भेदभाव डूबै रहै एक रस रंग है ॥ जैसे सिन्धुमाहिं भेद जद्दपि कलोलिनितै, निहचै निहारै वारि सिंधुहीको अंग है । तैसे दोनों नैनके समान दोनों नयननितै, वस्तुको न देखै सोई मिथ्याती कुढंग है ॥ ३० ॥

(७)

आपने सुभावपरनतिविषै सदाकाल, तिष्ठतु है सत्तारूप वस्तु सोई दर्व है । द्रव्यको जो गुनपरजायविषै परिनाम, निश्चैकरि ताहीको स्वभाव नाम सर्व है ॥ सोई ध्रुव उतपाद

वय इन भावनितै, सदा सनबंधजुत राजत सुपर्व है।
ऐसी एकताई कुंदकुंदजी बताई वृंद, वन्दतु है तिन्है सदा-
त्यागि उर गर्व है ॥ ३१ ॥

विशेषवर्णन। चौपाई।

दरवनिको गुनपरजयरूप। जो परिनाम होत तद्रूप।
ताको नाम सुभाव भनंत। सो धुव-उतपत-वयजुत तंत ॥३२॥
एक दरवके जथा कहेस। चौड़े सूक्ष्म अनेक प्रदेश॥
त्यों प्रनवनरूपी परवाह। लंवाई क्रमसहित अथाह॥ ३३॥

मनहरण।

दर्वनिके परदेश चौड़ाई समान कहे, जातै ये प्रदेश सदा-
काल स्थायीरूप है। पर्नेत प्रवाह ताकी क्रमहीतै होत तातै,
लंवाई समान याको सुगुरु प्ररूप है॥ जेते है प्रदेश ते ते
निज निज थानहीमें, पुव्वकी अपेच्छा उतपन्नमान भूप है।
आगेकी अपेच्छा व्ययरूप औ दरव एक, सर्वमाहि यातै ध्रुव
अचल अनूप है॥ ३४ ॥

दोहा।

या प्रकार परदेशको, उतपत वय धुव जान।
जथाजोग सरधा धरो, अव सुन और वखान॥ ३५॥

मनहरण।

जैसे परदेशनिको त्रिधारूप सिद्ध करी, तैसे परिनाम-
हूको ऐसे भेद कहा है। पहिले समैके परिनाम उतपाद-

रूप, पीछेकी अपेच्छा सोई वयभाव गहा है ॥ सदा एक दर्वके अधार परबाह बहै, तातैं द्रव्य द्वारतै सो ध्रौव्य सरदहा है । ऐसे उतपाद वय धुवरूप परिनाम, दर्वको सुभाव निरुपाध सिद्ध लहा है ॥ ३६ ॥

जैसे मुकताफलकी माला सूतमाँहि पोयें, तेजपुंज मंजु नाना मोतिनिकी दाना है । पुव्व पुव्व दानेकी अपेच्छा आगे आगेवाले, उतपाद पाछेवाले वयकरि माना है ॥ एकै सूत सर्वमाहिं तासकी अपेच्छा धुव, तैसे दर्वमाहिं तीनों साधत सयाना है । ऐसे नित्यानित्य लच्छ लच्छन अबाध सधै, धन्य जैनवैन स्यादवाद जाको बाना है ॥ ३७ ॥

(८)

मत्तगयन्द ।

भंग विना न बनै कहुं संभैव[1], संभव हू विन भंग न हो है ।
औ निहचै विनु ध्रौव पदारथ, व्यै उतपाद कहूं नहिं सोहै ॥
ज्यों मृतपिंडतैं कुंभ बनै, धुव दर्व दोऊमहँ एकहि हो है ।
त्यों सब दर्व त्रिधातम लच्छन, जानत वृंद विचच्छन जो है॥ ३८

चौपाई ।

वय विनु नाहिं होत उतपादं । उतपत विना न व्यय मरजादं ।
उतपत वय विनु ध्रौव्य न होई।धुव विन उतपत वय हु न जोई ३९

१ व्यय (नाश) । २ उतपाद ।

तातै जो उतपत सोई वै[1] । जोई नाश सोई उतपत है ॥
जो उतपत वय है ध्रुव सोई । जो ध्रुव सो उतपत व्यय होई ॥ ४० ॥

मनहरण ।

जैसे मृत[2]पिंडको विनाश कुंभ[3] उतपाद, दोनों परजाय धरे दर्व ध्रुव देखिये । विना परजाय कहूं दर्व नाहिं सरवथा, द्रव्य विना परजाय हू न कहूं पेखिये ॥ तातै उतपादादि स्वरूप दर्व आपही है, स्वयंसिद्ध भली भांति सिद्ध होत लेखिये । यामें एक पच्छ गहै लच्छ लच्छ दोष लगै, वृंदावन तातै त्रिधा लच्छन परेखिये ॥ ४१ ॥

षट्पद ।

केवल ही उतपाद कहै, दो दूषन गाजे ।
उपादान कारन—विहीन, घट कर्म न छाजे ॥
ध्रौव्य वस्तु विनु जो मूरख, उतपाद वतावे ।
सो अकाशके फूल, वाझसुत मौर वनावै ॥
जो केवल ही वय मानिये, तौ उतपति विनु नास किमि ।
पुनि ध्रौव्यवस्तुके नासतै, ज्ञानादिक गुन नास तिमि ॥ ४२ ॥
जो केवल ध्रुव ही प्रमान, इक पच्छ मानिये ।
तो दो दूषन तासमाहिं, परतच्छ जानियै ॥
प्रथम तास परजाय,—धरमको नाश होत है ।
विनु परजाय न दरव, कहूं निहचै उदोत है ॥

---

१ व्यय—नाश । २ मिट्टीका पिंड । ३ घड़ा ।

जो है अनित्त कहँ नित्त पद, तौ मनकी गति नित्त गन ।
यातै निरविघन त्रिधातमक, लच्छन द्रव्य प्रतच्छ भन ॥ ४३ ॥

(९)

द्रुमिला ।

परजायविषै उतपादरु व्यै धुव, वर्ततु है क्रमही करिके ।
निहचैकरि सो परजाय सदा, नित दर्वहिमाहिं रहै भरिके ॥
तिहितै सबमें वह द्रव्यहि है, सरवंग दशा अपनी धरिके ।
जिमि वृच्छतै मूल न शाखा जुदे, तिमि द्रव्य लखो भ्रमको हरिके ॥

मनहरण ।

जैसे वृच्छ अंशी ताके अंश बीज अंकुरादि तामें तीनों भेद भाव ऐसे लखि लीजिये । वीजको विनाश उतपाद होत अंकुरको, वृच्छ धुवताई ऐसी सरधा धरीजिये ॥ नूतन दरवको न होत उतपाद कहूं, यह तौ असंभौ कभी चितमें न दीजिये । दर्वकी स्वभावरूप परजाय पर्नतिमें, तीनों दशा होत वृंद याहीको पतीजिये ॥ ४५ ॥

(१०)

काव्य ।

उतपत वय धुव नाम सहित, जो भाव कहा है ।
दरव तासुतै एकमेक ही, होय रहा है ॥
पुनि सो एकहि समय, त्रिविध परनवति अभेदं ।
तातै त्रिविधसरूप, दरव निहचै निरवेदं ॥ ४६ ॥

दोहा ।

यहा प्रश्न कोई करत, उतपादादिक तीन ।
जुदे जुदे समयनिविषै, क्यों नहिं कहत प्रवीन ॥ ४७ ॥
तीन काज एकै समै, कैसे हो है सिद्ध ।
समाधान याको करौ, हे आचारज वृद्ध ॥ ४८ ॥
उतपादिकके पृथक, पृथक दरव जो होय ।
तव तो तीनों समयमें, तीन संभवै सोय ॥ ४९ ॥
जहां एक ही दरव है, तहँ इक समयमँझार ।
तीनों होते संभवत, दरवदिष्टिके द्वार ॥ ५० ॥

मनहरण ।

दर्वहीकी निज परजाय औ सु पर्नतितै, उतपाद ध्रुव वय दशा होत वरनी । दर्व दोनों रूप परिनवै आप आपहीमें, ताहीकी अपेक्षा एकै समै तीनो करनी ॥ मृत्तिकातै कुंभ जथा माटी ध्रुव दोनोंमाहिं, द्रव्य द्वार एकै समै ऐसे उर धरनी । स्यादवादवानीकी अपेच्छासेती एकै समै, ऐसे तीनों साधी है मिथ्यातकी कतरनी ॥ ५१ ॥

(११)

काव्य ।

दरवनिका परजाय, एक प्रगटत उदोत है ।
चतुरि अन्य परजाय, दशा जहँ नाश होत है ॥
तदपि दरव नहि नसै, नहीं उपजै तहँ जानो ।
सदा ध्रौव्य ही आपु रहै, निहचै परमानो ॥ ५२ ॥

छप्पय ।

संजोगिक परजाय, दोय परकार कहा है ।
इक समान जातीय, दुतिय असमान गहा है ॥
पुग्गलानु मिलि खंध, होत सोई समान है ।
जिय पुदगल मिलि देह, सु तौ असमान मान है ॥
इन परजैके उपजत नसत, दरव न उपजत नहि नसत ।
नित ध्रौव दशा निज धारिके, सदा एक रस ही लसत॥५३॥

(१२)

मनहरण ।

दरव स्वयमेव ही सरब काल आपहीसों, गुनसों गुनंतर प्रनवत रहत है । सत्तातै अभिन्न तातैं गुननिकी परजाय, दर्व ही है निश्चै ऐसे सुगुरु कहत है ॥ जैसे आम हरित वरन गुण त्याग सोई, पीत गुण आप ही सुभावसों लहत है । ध्रौवरूप आम दोउ दशामाहिं **वृंदावन,** तैसे दर्व सदा त्रिधा लच्छन लहत है ॥ ५४ ॥

(१३)

छप्पय ।

जो यह दरव न होय, आपु सत्ताको धारक ।
तौ तामें ध्रुव भाव, कहा आवै थितिकारक ॥
जो ध्रुवता नहिं धरै, कहो तव दरव होय किमि ।
तातै सत्तारूप दरव, स्वयमेव आपु इमि ॥

है दरव गुनी सत्ता सुगुन, सदा एकता भाव धरि।
परदेश भेद इनमें नहीं, यों भवि वृंद प्रतीत करि ॥५५॥

(१४)

मनहरण।

जहा परदेशकी जुदागीरूप भेद सो तौ, प्रविभक्त जानों जथा दंडी दंडवान है। संज्ञा लच्छनादितैं दरव सत्तामाहिं भेद, वीरस्वामी ताको नाम अन्यत्व वखान है॥ द्रव्यके अधार तो अनंत गुन तामें एक, सत्ताहू वसत सु विशेषन प्रमान है। सत्तामाहिं नाहिं और गुनको निवास वृंद, ऐसे द्रव्य सत्तामें विभेद ठहरान है॥ ५६॥

जैसे वस्त्र द्रव्य सेत गुनको धरै है आपु, जदपि प्रदेश एक तदपि विभेद है। वस्त्रको तो वोध फरसादि इन्द्रीहूतें होत, पै सुपेद गुन नैन द्वारहीतें वेद है॥ वस्त्रतें सुपेद गुन जुदो जो न मानै तौ, फरस आदि इन्द्री क्यों न जानत सुपेद है। ऐसे दर्व गुनमें है भेद सज्ञालच्छनतें, नाना भाति साधे स्यादवादी ही अखेद है॥ ५७॥

दोहा।

सत्ता दरवविषै सुगुन, ज्यों प्रदेश नहिं भेद।
त्यों स्वरूपहूकेविषै, कीजे भेद निखेद॥ ५८॥

छप्पय।

सत्ता दरवविषै विभेद, कहु क्यों न मानिये।
दरवविषै गुनगन अनंत, थिति पृथक जानियै॥

छप्पय ।

संजोगिक परजाय, दोय परकार कहा है ।
इक समान जातीय, दुतिय असमान गहा है ॥
पुग्गलानु मिलि खंध, होत सोई समान है ।
जिय पुदगल मिलि देह, सु तौ असमान मान है ॥
इन परजैके उपजत नसत, दरव न उपजत नहि नसत ।
नित ध्रौव दशा निज धारिके, सदा एक रस ही लसंत॥५३॥

(१२)

मनहरण ।

दरव स्वयमेव ही सरव काल आपहीसों, गुनसों गुनं-तर प्रनवत रहत है । सत्तातै अभिन्न तातै गुननिकी परजाय, दर्व ही है निश्चै ऐसे सुगुरु कहत है ॥ जैसे आम हरित वरन गुण त्याग सोई, पीत गुण आप ही सुभावसों लहत है । ध्रौवरूप आम दोउ दशामाहि **वृंदावन**, तैसे दर्व सदा त्रिधा लच्छन लहत है ॥ ५४ ॥

(१३)

छप्पय ।

जो यह दरव न होय, आपु सत्ताको धारक ।
तौ तामें ध्रुव भाव, कहा आवै थितिकारक ॥
जो ध्रुवता नहिं धरै, कहो तव दरव होय किमि ।
तातै सत्तारूप दरव, स्वयमेव आपु इमि ॥

है दरव गुनी सत्ता सुगुन, सदा एकता भाव धरि।
परदेश भेद इनमें नहीं, यों भवि वृंद प्रतीत करि ॥५५॥

(१४)

मनहरण।

जहां परदेशकी जुदागीरूप भेद सो तौ, प्रविभक्त जानों जथा दंडी दडवान है। संज्ञा लच्छनादितै दरव सत्तामाहिं भेद, वीरस्वामी ताको नाम अन्यत्व वखान है ॥ द्रव्यके अधार तो अनंत गुन तामें एक, सत्ताहू वसत सु विशेषन प्रमान है। सत्तामाहिं नाहिं और गुनको निवास वृंद, ऐसे द्रव्य सत्तामें विभेद ठहरान है ॥ ५६ ॥

जैसे वस्त्र द्रव्य सेत गुनको धरे है आपु, जदपि प्रदेश एक तदपि विभेद है। वस्त्रको तो बोध फरसादि इन्द्रीहूतें होत, पै सुपेद गुन नैन द्वारहीतें वेद है ॥ वस्त्रतें सुपेद गुन जुदो जो न मानै तो, फरस आदि इन्द्री क्यों न जानत सुपेद है। ऐसे दर्व गुनमें है भेद सज्ञालच्छनतें, नाना भांति साधै स्यादवादी ही अखेद है ॥ ५७ ॥

दोहा।

सत्ता दरवविषै सुगुरु, ज्यों प्रदेश नहिं भेद।
त्यों सरूपहूकविषै, कीजे भेद निखेद ॥ ५८ ॥

छप्पय।

सत्ता दरवविषै विभेद, कछु क्यों न मानिये।
दरवविषैं गुनगन अनंत, थिति पृथक जानिये ॥

निजाधार है दरव, विविध परजायवंत है।
गुनपरजै सब जुदे जुदे, जामें वसंत है।
औ सत्ता दरवाधीन है, ताखुमाहिं नहिं अपर गुन।
है एक विशेषन दरवको, तातै भेद अवश्य सुन॥ ५९॥

(१५)

सत्ता तीन प्रकारसहित, विस्तार कहा है।
दरवसत्त गुनसत्त, सत्त परजाय गहा है॥
जो तीनोंके माहिं, परस्पर भेद विराजै।
सोई है अन्यत्व भेद, इमि जिन धुनि गाजै॥
है दरवसत्त गुन-परज-गत, गुनसत एक सुधरम-रत।
परजायसत्त क्रमको धरै, यातै भेद प्रमानियत॥ ६०॥

मनहरण।

जैसे एक मोतीमाल तामें तीन भांत सेत, सेत[1] हार सेत सूत सेतरूप मैनिया[2]। तैसे एक दर्वमाहिं सत्ता तीन भांत सोहै, दर्वसत्ता गुनसत्ता पर्जसत्ता भनिया॥ दरवकी सत्ता है अनंत धर्म सर्वगत, गुनकी है एक ही धरमरूप गनिया। परजकी सत्ता क्रमधारी ऐसी भेदाभेद, साधी मुनि वृंद श्रुत-सिंधुके मथनियाँ[3]॥ ६१॥

(१६)

दर्व जो है अनंत धरमको आधारभूत, सो न गुन होत यों

---

१ श्वेत–सफेद। २ गुरिया। ३ मथनेवाले।

विचार उर रखिये। तथा जो है गुन एक धर्म निजरूप करि, सोऊ दर्व नाही होत निहचै निरखिये॥ ऐसे गुन गुनीमें विभेद है सुरूप करि, सर्वथा जुदागी न अभाव ही करखिये। द्रव्य और गुनमें विभेद विवहार तैसो अनेकांत पच्छसों विलच्छके हरखिये॥ ६२॥

दोहा।

दरव और गुनकेविषै, है अन्यत्वविभेद।
जुदे दोउ नहिं सरवथा, श्रीगुरु करी निषेद॥ ६३॥

मनहरण।

गुनगुनीमाहिं सरवथा ही अभावरूप, भेद माने दोनो-हीको नाम सरवथा है। जातै जेते गुन तेते जुदे जुदे दर्व होई, सोऊ बात सधै नाहि कहिवौ विकथा है॥ गुनीके अभाव भये गुनको अभाव होत, सोनेमाहिं साधि देखो साधी साध जथा है। तातै व्यवहारतै कथंचित विभेद मानो. वस्तुसिद्धिहेत श्रुतिमाहिं जथा गथा है॥ ६४॥

(१७)

द्रव्यको सुभाव परिनाम जु है निश्चैकरि, अन्वित स्वरूप सोई सत्ता नाम गुन है। सर्व गुनमें प्रधान फहरै निसान जाको, उतपादव्ययध्रुवसंजुत सुगुन है॥ ताही सनातित्तरूप सत्तामें विराजै दर्व, यातै सत्त नाम द्रव्य पावत अगुन है। ऐसे सत्ता गुन औ दरव गुनी एकताई, भाखी कुंदकुंद वृंद वदत निपुन है॥ ६५॥

(१८)

कुंडलिया ।

ऐसो गुन कोऊ नहीं, दरव विना जो होय ।
विना दरव परजाय हू, जगमें लखै न कोय ॥
जगमें लखै न कोय, वहुरि दिढ़तर ऐसे सुन ।
दरवहिका अस्तित्वभाव; सोई सत्ता गुन ॥
तिस कारन स्वयमेव, दरव सत्ता ही है सो ।
अनेकांततै सधत, वृंद निरदूषन ऐसो ॥ ६६ ॥

(१९)

छप्पय ।

या विधि सहजसुभावविषै, जो दरव विराजै ।
सो दरवौ परजाय, दोउ नयमय छवि छाजै ॥
दरवार्थिकनयद्वार, सदा सदभावरूप है ।
परजद्वारतै असदभाव, सोई प्ररूप है ॥
इन दो भावनिसंजुक्त नित, उतपत होत वखानिये ।
नयद्वार विविच्छाभेद है, वस्तु अभेद प्रमानिये ॥ ६७ ॥

दोहा ।

दो प्रकार उतपादजुत, दरव रहत सव काल ।
सद उतपाद प्रथम कह्यो, दुतिय असतकी चाल ॥६८॥
दरव अनादि अनंत जो, निज परजैकेमाहिं ।
उपजत है सो दरवदृग, सद उतपाद कहाहिं ॥ ६९ ॥

जो पूरव ही थो नहीं, ताको जो उतपाद ।
सो परजय-नयद्वारतै, असद्भाव निरवाद ॥ ७० ॥

(२०)

मनहरण ।

जीव दर्व आपने सुभाव प्रनवंत संत, मानुष अमर वा अपर पर्ज धारैगो । तिन परजायनिसों नानारूप होय तऊ, कहा तहाँ आपनी दरवशक्ति छाँरैगो ॥ जो न कहूं आपनी दरव शक्ति छाँड़ै तब, कैसे और रूप भयो निहचै विचारैगो । ऐसे दर्व शक्ति नानारूप परजाय व्यक्त, जथारथ जाने वृन्द सोई आप तारैगो ॥ ७१ ॥

(२१)

एक परजाय जिहिकाल परिनवै जीव, तिहिकाल और परजायरूप नाहीं है । मानुष परज परिनयौ तब देव तथा, सिद्धपरजाय तहां कहा ठहराही है ॥ देव परजायमें मनुष-सिद्ध पर्ज कहा ऐसे परजायद्वार भेद विलगाही है । या प्रकार एकता न आई तब कैसे नाहिं, पर्जद्वार नाना नाम दरवलहाही है ॥ ७२ ॥

(२२)

दर्वार्थिकनय नैन खोलकर देखिये तो, सोई दर्व और रूप भयो नाहिं कहाँ । फेर परजाय नय नैनतें निहारिये तो, सोई नानारूप भयो जैसो पर्ज जहाँ ॥ जैसे नर नारकादि

काय जिहि काल लहै, तासों तनमई होय रहै तैसो तबही । जैसे आगि एक पै प्रवेश नाना ईंधनमें, ईंधन अकारतै भयौ है भेद सबही ॥ ७३ ॥

(२३)

छप्पय ।

दरव कथंचित अस्तिरूप, राजै इमि जानो ।
बहुर कथंचित नास्तिरूप, सोई परमानो ॥
होत सोइ पुनि अवक्तव्य, ऐसे उर धरनी ।
फिर काहू परकार सोइ, उभयातम वरनी ॥
पुनि और सुभंगनिकेविषै, जथाजोग सोई दरव ।
निरवाध वसत निजरूपजुत, श्रीगुरु भेद भने सरव ॥७४॥

मनहरण ।

आपनी चतुष्टै दर्व-छेत्र-काल-भावकरि, तिहूंकालमाहिं दरव अस्तित-सरूप है । सोई परद्रव्यके चतुष्टैकरि नास्ति सदा, फेर सोई एकै काल उभैरूप भूप है ॥ एकै काल नाहि जात कह्यो तातै अकथ है, फेर सोई अस्ति अवक्तव्य सु अनूप है । फेर नास्ति अकथ औ अस्ति नास्ति अकथ है, कथंचितवानी सो सुधारसको कूप है ॥ ७५ ॥

तथा चोक्त देवागमकारिकाया—

भावैकान्ते पदार्थानामभावानामपह्नुवात् ।
सर्व्वात्मकमनाद्यन्तमस्वरूपमतावकम् ॥ ९ ॥

कार्यद्रव्यमनादि स्यात्प्रागभावस्य निह्नवे ।
प्रध्वंसस्य च धर्म्मस्य प्रच्यवेऽनन्ततां व्रजेत् ॥ १० ॥
सर्व्वात्मकं तदेकं स्यादन्यापोहव्यतिक्रमे ।
अन्यत्र समवायेन व्यपदिश्येत सर्वथा ॥ ११ ॥
अभावैकान्तपक्षेऽपि भावापह्नववादिनाम् ॥
बोधवाक्यं प्रमाणं न केन साधनदूषणम् ॥ १२ ॥

दोहा ।

एक अरथवाचक शबद, भावअस्ति ये जान ।
कहु अभाव कै नास्ति कहु, दोनों अरथ समान ॥ ७६ ॥
जो पदार्थ सब सर्वथा, गहिये भावहिरूप ।
अरु अभाव सब लोपिये, तौ तित दूषनभूप ॥ ७७ ॥
एक दरव सरवातमक, तब निहचै ह्वै जाय ।
आदि अत पुनि नहिं बनै, कीजे कोटि उपाय ॥ ७८ ॥
ज्यो माटीमें पुव्व ही, कुंभ नही है रोप ।
प्रागभाव याको कहत, ताको ह्वै है लोप ॥ ७९ ॥
जो प्रध्वंसाभावको, लोप करै तव येह ।
कुंभकर्मको नाश नहिं, औ अनंतता लेह ॥ ८० ॥
जो अन्योन्य अभाव है, धरम दरवकेमाहिं ।
ताहि लोपते सब दरव, एक रूप ह्वै जाहिं ॥ ८१ ॥
जो अत्यंताभाव है, ताहि विलोपैं ठीक ।
दरव न कैस हु सधि सकै, दूपन लगै अधीक ॥ ८२ ॥

तातैं दरवहिकेविषै, बसै अभाव सुधर्म।
वहां सहज सत्ताविषै, थापै थिर तजि भर्म ॥ ८३ ॥
धरम अभाव जु वस्तुमें, बसत सोइ सुन मीत।
पर-सरूप नहिं होत है, यह दिढ करु परतीत ॥ ८४ ॥
जो अभाव ही सरवथा, माने वस्तु समस्त।
भाव धरमको लोपिके, जो सबमें परशस्त ॥ ८५ ॥
तौ ताके मतकेविषै, ज्ञान तथा सब वैन।
अप्रमान सब ही भये, साधै बाधै केन ॥ ८६ ॥
इत्यादिक दूषन लगैं, तातै हे भवि वृंद।
वस्तु अनंत धरममई, भाषी श्रीजिनचंद ॥ ८७ ॥
सो सब सातों भंगतै, साधो भ्रमतम त्यागि।
अनेकांत रसमें पगो, निज-सरूप अनुरागि ॥ ८८ ॥

(२४)

मनहरण।

ऐसी परजाय कोऊ नाहीं है जगतमें जो, रागादि विभाव विना भई उतपन है। रागादि विभावक्रिया अफल न होय कहूं, याको फल चारों गतिमाहिं भरमन है ॥ जैसे परमानू रूछ चीकन सुभावहीसों, बंध खंधमाहिं तैसे जानो जग-जन है। जातै वीतराग आतमीक पर्म धर्म सो तो, बंधफलसों रहित तिहूंकाल धन है ॥ ८९ ॥

(२५)

नाम कर्म आपनै सुभावसों चिदातमाके, सहज सुभावको आच्छाद करि लेत है। नर तिरजंच नेरकौर[1] देवगतिमाहिं, नाना परकार काय सोई निरेमेत[2] है॥ जैसे दीप अगनिसुभाव-करि तेलको सु—,भाव दूरकरिके प्रकाशित धरेत है। ज्ञानावरना-दिकर्म जीवको सुभाव घाति, मनुष्यादि परजाय तैसे ही करेतु[3] है ॥ ९० ॥

(२६)

नामकर्म निश्चै यह जीवको मनुष्य पशु, नारकी सु देव-रूप देहको बनावै है। तहा कर्मरूप उपयोग परिनवै जीव, सहज सुभाव शुद्ध कहूं न लहावै है॥ जैसे जल नीम चंद-नादिमाहिं गयौ सो, प्रदेश और स्वाद निज दोनों न गहावै है। तैसे कर्मभाव परिनयौ जीव अमूरत, चिदानंद वीत-रागभाव नाहिं पावै है ॥ ९१ ॥

(२७)

छप्पय।

इमि संसारमँझार, दरवके द्वार जु देखा।
तौ कोऊ नहिं नसत, न उपजत्त यही विशेखा॥
जो परजै उतपाद होत, सोई वय हो है।
उतपत वयकी दशा, विविध परजयमें सोहै॥

---

१ नरक और। २ निर्माण करता है, बनाता है। ३ करता है।

धुव दरव स्वांग बहु धारिके, गत गतमें नाचत विगत ।
परजयअधार निरधार यह, दरव एक निजरस पगत ॥९२

(२८)

तिस कारन संसारमाहिं, थिर दशा न कोई ।
अथिररूप परजैसुभाव, चहुंगतिमें होई ॥
दरवनिकी संसरन क्रिया, संसार कहावै ।
एक दशाको त्यागि, दुतिय जो दशा गहावै ॥
या विधि अनादितै जगतमें, तन धरि चेतन भमत है ।
निज चिदानंद चिद्रूपके, ज्ञान भये दुख दमत है ॥९३॥

विशेषवर्णन–मनहरण ।

ताहीतै जगतमाहिं ऐसो कोऊ काय नाहिं, जाको अवधारि जीव एक रूप रहैगो । याको तो सुभाव है अथिररूप सदाहीको, ऐसे सरधान धरै मिथ्यामत बहैगो ॥ जीवकी अशुद्ध परनतिरूप क्रिया होत, ताको फल देह धारि चारों गति लहैगो । याको नाम संसार बखाने सारथक जिन, जाकी भवथिति घटी सोई सरदहैगो[1] ॥ ९४ ॥

(२९)

अनादितै पुग्गलीक कर्मसों मलीन जीव, रागादि विकार भाव कर्मको लहत है । ताही परिनामनितै पुग्गलीक दर्व कर्म, आयके प्रदेशनिसों बंधन गहत है ॥ तातै राग आदिक

१ श्रद्धान करेगा ।

विकारभाव भावकर्म, नयो दर्वकरमको कारन कहत है। ऐसो बंधभेद भेदज्ञानतै विवेद वृंद, साधी है सिद्धांतमाहिं सुगुरु महत है ॥ ९५ ॥

प्रश्न—दोहा।

दरव करमतै भावमल, भाव करमतै दव्व।
यामै पहिले कौन है, मोहि बतावो अव्व ॥ ९६ ॥
इतरेतर आश्रय यहां, आवत दोष प्रसंग।
ताको उत्तर दीजिये, ज्यों होवै भ्रम भंग ॥ ९७ ॥

उत्तर।

उत्तर सुनो! अनादितै, दरवकरमकरि जीय।
है प्रवंध ताको सुगुरु, कारन पुव्व गहीय ॥ ९८ ॥
ताही पूरववंधकरि, होहि विभाव विकार।
ताकरि नूतन बँधत है, यहाँ न दोष लगार ॥ ९९ ॥
जगदागमहूतै यही, सिद्ध होत सुखधाम।
जो है करम निमित्त विनु, रागादिक परिनाम ॥ १०० ॥
तो वह सहज सुभाव है, मिटै न कवहूं येव।
तातै दरवकरम निमित, प्रथम गही गुरुदेव ॥ १०१ ॥
दरवकरम पुदगलमई, पुदगल करता तास।
भावकरम आतम करै, यह निहचै परकास ॥ १०२ ॥

पुनः प्रश्न।

तुम भाषत हौ हे सुगुरु, 'जीवकरमसंजोग'।
सो क्या प्रथम पृथक हुते, पाछे भयो नियोग ॥ १०३ ॥

जासु नाम 'संजोग' है, ताको तो यह अर्थ ।
जुदी वस्तु मिलि एक ह्वै, कीजे अर्थ समर्थ ॥ १०४ ॥

उत्तर—मनहरन ।

जैसे तिलीमांहि तैल आगि है पखानमाहिं, छीरमाहिं नीर हेम खानिमें समल है । इन्है जब कारनतै जुदे होत देखै तब, जानै जो मिलापहूमें जुदे ही जुगल है ॥ तैसेही अनादि पुग्गलीक दर्व करमसों, जीवको संबंध लसै एक थल रल है । भेदज्ञान आदि शिव साधनतैं न्यारो होत, ऐसे निरवाध संग सधत विमल है ॥ १०५ ॥

मतांतर । दोहा ।

केई मतवाले कहै, प्रथम अमल थो जीव ।
माया जड़सों मलिन ह्वै, चहुँगति भमत सदीव ॥१०६॥
प्रगट असंभव बात यह, शुद्ध अमल चिद्रूप ।
क्योंकरि बंध दशा लहै, परै केम भवकूप ॥ १०७ ॥
विमलभाव तब बंधको, कारन भयो प्रतच्छ ।
मोच्छ अमलता तब कहो, कैसें सधै विलच्छ ॥ १०८ ॥

(३०)

मनहरण ।

परिनामरूप स्वयमेव आप आतमा है, जातै परिनाम परिनामीमें न भेद है । सोई परिनामरूप क्रिया जीवमयी होत, आपनी क्रियातै तनमयता अछेद है ॥ जीवकी जो क्रिया ताको भावकर्म नाम कह्यौ, याको करतार जीव निहचै निवेद

है। तातै दर्व करमको आतमा अकरता है, याको करतार पुदगल कर्म वेद है ॥ १०९ ॥

प्रश्न—दोहा।

भावकरम आतम करै, यह हम जानी ठीक।
दरवकरम अबको करै, यह सदेह अधीक ॥ ११० ॥

उत्तर—मनहरण।

जैसे भाव कर्मको करैया जीव राजत है, पुग्गल न ताको करै कभी यों पिछानियौ। निज निज भावके दरव सब करता है, परके सुभावको न करै कोऊ मानियौ ॥ यह तो प्रतच्छ भेद ज्ञानतै विलच्छ देखो, सबै निज कारजके करता प्रमानियौ। दरव करम पुदगल पिंड तातै याको, करतार पुग्गल दरव सरधानियौ ॥ १११ ॥

(३१)

सवैया (३१ मात्रा)

आतम निज चेतनसुभावकरि, प्रनवतु है निहचै निरधार।
सो चेतनता तीन भाति है, यों वरनी जिनचंद उदार ॥
ज्ञानचेतना प्रथम वखानी, दुतिय करमचेतना विचार।
त्रितियकरमफलचेतनता है, वृंदावन ऐसे उद्धार ॥ ११२ ॥

(३२)

मनहरण।

जीवादिक सुपर पदारथको भेदजुत, तदाकार एकै काल जानै जो प्रतच्छ है। सोई ज्ञानचेतना कहावत अमलरूप,

वृंदावन तिहूँकाल विशद विलच्छ है ॥ जीवके विभावको अरंभ कर्मचेतना है, दर्वकर्मद्वार जामें भेदनको गच्छ है। सुखदुखरूप कर्मफल अनुभवै जीव, कर्मफलचेतना सो भाषी श्रुति स्वच्छ है ॥ ११३ ॥

(३३)

परिनाम आतमीक आप यह आतमा है, सदा काल एकताई तासों तदाकार है । सोई परिनाम ज्ञान कर्म कर्मफल तीनों, चेतनता होनको समरथ उदार है ॥ याही एकताईतै सुज्ञान कर्म कर्मफल, तीनोंरूप आतमा ही जानो निरधार है । अभेद विवच्छातै दरवहीके अंतरमें, भेद सर्व लीन होत भाषी गैनधार है ॥ ११४ ॥

(३४)

करता करन तथा करम करमफल, चारोंरूप आतमा विराजै तिहूंपनमें । ऐसे जिन निहचै कियो है भलीभांतिकरि, एकता सुभाव अनुभवै आपु मनमें ॥ परदर्वरूप न प्रनवै काहू कालमाहिं; लागी है लगन जाकी आतमीक घनमें । सोई मुनि परम धरम शिवसुख लहै, **वृंदावन** कबहूं न आवै भववनमें ॥ ११५ ॥

---

१ गणधरदेवने । २ करण ।

दोहा।

भेदभाव जेते कहे, तेते वचनविलास।
निरविकलप चिद्रूप है, गुन अनंतकी रास ॥ ११६ ॥
समल अमल दोनों दशा, तामें आतम आप।
चार भेदमय सुथिर है, देखो निजघट व्याप ॥ ११७ ॥
यों जब उर सरधा धरै, तजि परसों अनुराग।
परममोखसुख तब लहै, चिदानंदरस पाग ॥ ११८ ॥

मनहरण।

जैसे लाल फूलके उपाधसों फटिकमाहि, लालरूप लसत विशाल ताकी छटा है। तैसे ही अनादि पुदगल कर्मबंधके सजोगसों उपज्यौ जीवमाहिं राग ठटा है ॥ जबै उपाधीक रंग संगतै नियारौ होत, तबै शुद्ध जोति जगै फटै मोहघटा है। एक परनत परमानू ज्यों न बँधै त्यो ही, रागादि विभाव विना बंधभाव कटा है॥ ११९ ॥

छप्पय।

जब यह आतम आप, भेदविज्ञान धार करि।
निज सरूपको लखै, सकल भ्रमभाव टार करि ॥
करता करम सुकर्म, कर्मफल चारभेदमय।
चिदविलास ही समल, अमल दोउ दशामाहिं ह्य ॥
इमि जानि तब हि परवस्तुतै, रागादिक ममता हरै।
निज शुद्ध चेतनाभावमें, सुथिर होय शिवतिय वरै १२०

कवित्त । (३१ मात्रा)

इहि प्रकार निरदोष बतायो, शिवपुरको मग सुखद सदीव ।
ताहि त्यागि जो आन जतनसों, चाहत होन मूढ़ शिवपीव ॥
सो मूरख परधान जगतमें, तास आश विपरीत अतीव ।
जीभ स्वादके कारन सो शठ, पानी मथिके चाहत घीव१२१॥

अधिकारान्तमंगल । मत्तगयन्द ।

श्रीजिनचंद सुखाम्बुधिवर्द्धन, भव्यकुमोदप्रमोदक नीको ।
जन्मजरामृततापविनाशन, शासन है जनके हितहीको ॥
शुद्धपयोग निरोग सु भेषज, पोषनको समरत्थ अधीको ।
सो इत मंगल भूरि भरो प्रभु, वंदत वृंद सदा तुमही को ॥

दोहा ।

वंदों श्रीसरवज्ञपद, भ्रमतमभंजनभान ।
विघनहरन मंगलकरन, देत विमल कल्यान ॥ १२३ ॥
श्रीमत्प्रवचनसारकी, भाषाटीकामाहिं ।
दरवनिको सामान्यतः, कथन समाप्त कराहिं ॥ १२४ ॥

इतिश्रीमत्कुन्दकुन्दाचार्यकृतपरमागमश्रीप्रवचनसारजी ताकी वृंदावनकृतभाषाविषै दरवनिका सामान्यवर्णनका अधिकार चौथा पूरा भया ।

इहा ताई सर्व गाथा १२७ एक सौ सत्ताईस भई और भाषाके छंद सर्व ४६२ चारिसौ बासठ भये सो जयवत होऊ । लिखी वृन्दावनने यही प्रथम प्रति है । मगलमस्तु । श्रीरस्तु । मिती मार्गशीर्षकृष्णा १३ ॥ गुरुवार सवत् १९०५ ॥ काशीजीमे, निज परोपकारार्थ । भूल चूक विशेषीजन शोधि शुद्ध कीजो ॥

अथ पञ्चमोविशेषज्ञेयतत्त्वाधिकारः ।

मगलाचरण–दोहा ।

वंदों आतम जो त्रिविध, वर्जित कर्मविकार ।
नेत भेत ज्ञातृत्व जुत, सब विधि मंगलकार ॥ १ ॥
अब विशेषता दरवका, कथनरूप अधिकार ।
श्रीगुरु करत अरभ सो, जैवंतो सुखकार ॥ २ ॥

(१)

मनहरण ।

सत्तारूप दर्व दोय भांति है अनादि सिद्ध, जीव औ अजीव यही साधी श्रुति मंथ है । तामें जीव लच्छन विलच्छन है चेतनता, जासको प्रकाश अविनाशी पूज पंथ है ॥ ताहीको प्रवाह ज्ञान दर्शनोपयोग दोय, सामान्य विशेष वस्तु जानिवेतै कंथ है । पुग्गलप्रमुख दर्व अजीव अचेतन है, ऐसे वृंद भाषी कुंदकुंद निरगंथ है ॥ ३ ॥

(२)

छप्पय ।

जो नभको परदेश जीव, पुदगल समेत है ।
धर्माधर्म सु अस्तिकाय,—को जो निकेत है ॥
कालानूजुत पंच दरव, परिपूरन जामें ।
सोई लोकाकाश जानु, संशय नहिं यामें ॥
सब कालमांहि सो अचल है, अवगाहन गुनको धरै ।
तसु परे अलोकाकाश जहँ, पंच रंच नहिं संचरै ॥ ४ ॥

(३)

दोहा ।

पुदगल अरु जीवातमक, जो यह लोकाकाश ।
ताके थिति उतपाद वय, परनति होत प्रकाश ॥ ५ ॥
भेद तथा संघाततै, ज्यों श्रुति करत बखान ।
ताको उर सरधा धरो, त्यागो कुमत–वितान ॥ ६ ॥

मनहरण ।

क्रियावंत भाववत ऐसे दोय भेदनितै, दर्वनिमें भेद दोय भाषी भगवंत है । मिलि बिछुरन हलचलन क्रिया है औ, सुभाव परनति गहै सोई भाववंत है ॥ जीव पुदगलमाहिं दोनों पद पाइयत, धर्माधर्म काल नभ भाव ही गहत है । धन्य धन्य केवलीके ज्ञानको प्रकाश वृंद, एकै वार सर्व सदा जामें झलकंत है ॥ ७ ॥

(४)

मनहरण ।

जीवाजीव दर्व जिन चिह्ननितै भलिभाति, चीहैं जानै जाति सोई लच्छन बखाना है । सो है वह दर्वके सरूपकी विशेषताई, जुदो कछु वस्तु नाहिं ऐसे परमाना है । मूरतीक दरवको लच्छन हू मूरतीक, अमूरतिवतनिको अमूरत बाना है । लच्छके जनायवेतै लच्छन कहावै वृंद, प्रदेशतै एकमेक सिद्ध ठहराना है ॥ ८ ॥

लक्षण यथा—दोहा।

मिली परस्पर वस्तुको, जाकरि लखिये भिन्न।
लच्छन ताहीको कहत, न्यायमती परविन्न ॥ ९ ॥
जो सुकीय नित दरवके, है अधार निरवाध।
सोई गुन कहलावई, वर्जित दोष उपाध ॥ १० ॥
तेई दरवनिके सुगुन, लच्छन नाम कहाहिं।
जातैं तिनकरि जानिये, लच्छ दरव सब टाहि ॥ ११ ॥
भेद विवच्छातैं कहे, गुनी सुगुनमें भेद।
वस्तु विचारत एक है, ज्ञानी लखत अखेद ॥ १२ ॥

(५)

छप्पय।

मूरतीक गुनगन इन्द्रिनिके, गहन जोग है।
सो वह पुग्गल दरवमई, निहचै प्रयोग है॥
वर्न गंध रस फास आदि बहु भेद तासके।
अब सुनि भेद अमूरत, दरवनिके प्रकाशके॥
जो दरव अमूरतवन्त है तासु अमूरत गुन लसत।
सो ज्ञान अतिंद्रिय विषैं प्रतिबिंबित जुगपत वसत ॥ १३ ॥

(६)

[illegible]

[illegible]
[illegible]

पर्मअनू अति सूच्छिमतै, पृथिवी परजंत समस्त गहे है ।
और जु शब्द सो पुग्गलकी, परजाय विचित्त अनित्त कहे है ॥

षट्प्रकार पुद्गलवर्णन—दोहा ।

षटप्रकार पुदगल कहे, सुनो तासुके भेद ।
जथा भनी सिद्धांतमें, संशयभाव विछेद ॥ १५ ॥
सूच्छिम सूच्छिम प्रथम है, **सूच्छिम** दूजो भेद ।
सूक्ष्मथूल तीजो कह्यौ, **थूलसूक्ष्म** है वेदं[2] ॥ १६ ॥
थूल पंचमों जानियै, **थूलथूल** षट एम ।
अब इनको लच्छन सुनो, श्रुति मथि भाषत जेम ॥१७॥

मनहरण ।

प्रथम विभेद परमानू[1] परमान मान, कारमानवर्गना **दुतीय** सरधान है । नैन नाहिं गहै चार इंद्री जाहि गहैं सोई, **तीजो** भेद विषैके विवशतै निदान है । **चौथो** भेद नैनतै निहारियै जु छायादि सो, हस्तादिसों नाहि गह्यौ जात परमान है । **पांचमो** विभेद जल तेल मिलै छेदै भेदै, **छठो** भूमि भूधरादि संधि न मिलान है ॥ १८ ॥

वर्णभेद—दोहा ।

अरुन पीत कारो हरो, सेत वरन ये पंच ।
इनके अंतरके विषै, भेद अनंते सच ॥ १९ ॥

रसभेद ।

खाटा मीठा चिरपिरा, करुआ और कषाय ।
पाच भेद रसके कहे, तासु भेद बहु भाय ॥ २० ॥

---

१ परमाणु । २ चौथा ।

गंधभेद।

गंध दोय परकार है, प्रथम सुगंध पुनीत।
दुतिय भेद दुरगंध है, यों समुझो उर मीत॥ २१॥

स्पर्शभेद।

तपत शीत हरुवो गरू, नरम कठोर कहाय।
रुच्छ चीकनो फरसके, आठ भेद दरसाय॥ २२॥

प्रश्न—चौपाई।

पुदगलके गुन वरने जिते। इन्द्रीगम्य कहे तुम तिते॥
तहां होत शंका मनमाहिं। सुनिये कहों वेदकी छाहिं॥२३॥
परमानू अति सूच्छिम भना। कारमानकी पुनि वरगना॥
तिनहूमें चारों गुन वसै। क्यों नहिं इन्द्री ग्राहै तिसै॥ २४॥

उत्तर—कवित्त (३१ मात्रा)।

परमानू आदिक पुदगलको, इन्द्रीगम्य कहे इस हेत।
जब वह खंध बंधमें ऐहै, शक्त व्यक्त करि सुगुन समेत।
तब सो इंद्रीगम्य होइगो, व्यक्तरूप यों लखो सचेत।
इन्द्रिनिके हैं विषय तासु गुन तिसी अपेच्छा कथन कथेत २५

पुन. प्रश्न—दोहा।

पुदगल मूरतिवंत जिमि. तिमि है शब्द प्रतीत।
तो पुदगलको गुन कहो. परज कहो मति मीत॥ २६॥

उत्तर—

गुनको लच्छन नित है. परज अनित प्रतच्छ।
गुन होते तित शवद नित. होतो लग्नो दच्छ॥ २७॥

जो होतौ गुन तौ सुनो, अनू आदिके माहि।
सदा शबद उपजत रहत, सो तौ लखियत नाहिं॥ २८॥
खधनिके व्याघाततै, होत शबद परजाय।
प्रथम भेद भाषामई, दुतिय अभाषा गाय॥ २९॥

मनहरण।

केई मतवाले कहै शब्द गुन अकाशको, तासों स्यादवादी कहै यह तो असंभौ है। आकाश अमूरतीक इंद्रिनिके गम्य नाहिं, शब्द तो श्रवणसेती होत उपालंभौ है। कारन अमूरतको कारजहू तैसो होत, यह तो सिद्धांत वृंद ज्यों सुमेरु थंभौ है। सर्व ही अकाशतै शबद सदा चाहियत, गुनी गुन तजै कैसे बड़ो ही अचंभौ है॥ ३०॥

दोहा।

तातै शबद प्रतच्छ है, पुदगलको परजाय।
खंध जोगतै ऊपजत, वरन अवरन सुभाय॥ ३१॥

प्रश्न—

पुदगलकी परजाय तुम, शबद कही सो ठीक।
श्रवन हि ताकों गहत है, यही सनातन लीक॥ ३२॥
और चार इंद्रीनिकरि, क्यों नहि लखियै ताहि।
मूरतीक तौ सब गहै, याको करो निबाह॥ ३३॥

उत्तर—

पांचो इद्रिनिके विषय, जुदे कहे श्रुतिमाहि।
तहां न ऐसो नेम की, सब सब विषय गहाहिं॥ ३४॥

नेम यही जानो प्रगट, निज निज विषयनि अच्छ ।
गहन करहि नहिं अपरके, विषय गहहिं परतच्छ ॥ ३५ ॥
ताहीतैं वह श्रवनको, शवद विषय दिढ जान ।
श्रवन हि ताकों गहत है, और न गहत निदान ॥ ३६ ॥

प्रश्न-छप्पय ।

इहा प्रश्न कोउ करत, गध गुन नीरमाहि नहि ।
ताहीतैं नाशिका नाहिं, संग्रहत तासुकहिं ॥
अगनि गंध रस रहित, घ्रान रसना नहिं गाहैं ।
पौनमें न दरसात, गध रस रूप कहा है ॥
ताहीतैं नाक-नयन-रसन, मारुतको नहि गहि सकत ।
गुन होत गहहि निज निज विषय,यही अच्छकी रीति अत ॥

उत्तर-दोहा ।

पुद्गल दरव धरैं सदा, फरस रूप रस गध ।
सव परजायनिकेविषै, परमानू लगि खध ॥ ३८ ॥
कहू कोउ गुन मुख्य है, कहू कोउ गुन गौन ।
चारमाहि कमती नहीं, यह निहचै चितौन ॥ ३९ ॥
एक परजमें जे अनू प्रनट है परधान ।
दुतिय रूप सो परिनवहि, देखत दृष्टि प्रमान ॥ ४० ॥
वरनोतैं वरनातर, रसतैं पुनि रस और ।
इत्यादिक प्रनवत रहत, जथाजोग सव ठौर ॥ ४१ ॥

छप्पय ।

चंद्रकात पाषानकाय, पृथिवी पृथिवीतन ।
स्रवत तासुतैं अंबु गंधगुनरहित मुनीनन ॥

लखो वारितै होत काय, पुहमी मुकताफल।
अरणि दारुतै अनल होत, जलतै सु वायुबल॥
इत्यादि अनेक प्रकारको, प्रनवन बहुत विधान है।
तातै सब परजैकेविषै, चारों गुन परधान है॥ ४२॥

दोहा।

तातै पृथ्वी आदिके, पुदगलमें नहिं भेद।
प्रनवनमाहिं विभेद है, यों गुरु करी निवेद॥ ४३॥
सबहीमें फरसादि गुन, चारो है निरधार।
वृंदावन सरधा धरो, सब संशय परिहार॥ ४४॥

(७-८)

मनहरण।

एकै काल सरव दरवनिको थान दान, कारन विशेष गुन राजत अकासमें। धरम दरवको गमन हेत कारन है, जीव पुदगलके विचरन विलासमें॥ अधरम दर्वको विशेष गुन थिति हेत, दोनों क्रियावंतनिके थित परकासमें। कालको सुभाव गुन वरतनाहेत कह्यौ, आतमाको गुन उपयोग प्रतिभासमें॥ ४५॥

दोहा।

ऐसे मूरतिरहितके, गुन संक्षेप भनंत।
वृंदावन तामें सदा, है गुन और अनंत॥ ४६॥
जो गुन जासु सुभाव है, सो गुन ताहीमाहिं।
औरनिके गुन औरमें, कबहूं व्यापै नाहिं॥ ४७॥

नभको तो उपकार है, पांचोंपर सुन मीत ।
धर्माधर्मनिको लसै, जिय पुद्गलसों रीत ॥ ४८ ॥
काल सबनिपै करतु है, निज गुनतै उपकार ।
नव जीरन परिनमनको, यातै होत विचार ॥ ४९ ॥
जीव लखै जुगपत सकल, केवलदृष्टि पसार ।
याहीतै सब वस्तुको, होत ज्ञान अविकार ॥ ५० ॥

(९)

जीवरु पुदगल काय नभ, धरम अधरम तथेस ।
है असंख परदेशजुत, कालरहित परदेस ॥ ५१ ॥

मनहरण ।

एक जीव दर्वके असंख परदेश कहे, संकोच विथार जथा दीपकपै ढपना । पुग्गल प्रमान एक अप्रदेशी है तथापि, मिलन शकतिसो बढ़ावै वंश अपना ॥ धर्माधर्म अखंड असंख परदेशी नभ, सर्वगत अनंत प्रदेशी वृंद जपना । कालानुमें मिलन शकतिको अभाव तातै, अप्रदेशी ऐसे जाने मिटै ताप तपना ॥ ५२ ॥

(१०)

लोक औ अलोकमें अकाश ही दर्व और, धर्माधर्म जहा लगु पूरित सो लोक है । ताहीविषै जीव पुदगलको प्रतीत करो, कालकी असंख जुदी अनूको थोक है ॥ समयादि परजाय जीव पुदगलहीके, परिनामनिसों परगटन सुतोक है ।

लखो वारितै होत काय, पुहमी मुकताफल ।
अरणि दारुतै अनल होत, जलतै सु वायुबल ॥
इत्यादि अनेक प्रकारको, प्रनवन बहुत विधान है ।
तातै सब परजैकेविषै, चारों गुन परधान है ॥ ४२ ॥

दोहा ।

तातै पृथ्वी आदिके, पुदगलमें नहिं भेद ।
प्रनवनमाहिं विभेद है, यों गुरु करी निवेद ॥ ४३ ॥
सबहीमें फरसादि गुन, चारों है निरधार ।
वृंदावन सरधा धरो, सब संशय परिहार ॥ ४४ ॥

(७-८)

मनहरण ।

एकै काल सरव दरवनिको थान दान, कारन विशेष गुन राजत अकासमें । धरम दरवको गमन हेत कारन है, जीव पुदगलके विचरन विलासमें ॥ अधरम दर्वको विशेष गुन थिति हेत, दोनों क्रियावंतनिके थित परकासमें । काल-को सुभाव गुन वरतनाहेत कह्यौ, आतमाको गुन उपयोग प्रतिभासमें ॥ ४५ ॥

दोहा ।

ऐसे मूरतिरहितके, गुन संक्षेप भनंत ।
वृंदावन तामें सदा, है गुन और अनंत ॥ ४६ ॥
जो गुन जासु सुभाव है, सो गुन ताहीमाहिं ।
औरनिके गुन औरमें, कबहूं व्यापै नाहिं ॥ ४७ ॥

नभको तो उपकार है, पांचोंपर सुन मीत।
धर्माधर्मनिको लसै, जिय पुदगलसों रीत ॥ ४८ ॥
काल सबनिपै करतु है, निज गुनतै उपकार।
नव जीरन परिनमनको, यातै होत विचार ॥ ४९ ॥
जीव लखै जुगपत सकल, केवलदृष्टि पसार।
याहीतै सब वस्तुको, होत ज्ञान अविकार ॥ ५० ॥

(९)

जीवरु पुदगल काय नभ, धरम अधरम तथेस।
है असंख परदेशजुत, कालरहित परदेस ॥ ५१ ॥

मनहरण।

एक जीव दर्वके असंख परदेश कहे, संकोच विथार जथा दीपकपै ढपना। पुग्गल प्रमान एक अप्रदेशी है तथापि, मिलन शकतिसों बढावै वंश अपना॥ धर्माधर्म अखड असंख परदेशी नभ, सर्वगत अनंत प्रदेशी वृंद जपना। कालानूमें मिलन शकतिको अभाव तातै, अप्रदेशी ऐसे जानै मिटै ताप तपना ॥ ५२ ॥

(१०)

लोक औ अलोकमें अकाश ही दरव और, धर्माधर्म जहां लगु पूरित सो लोक है। ताहीविषैं जीव पुदगलको प्रतीत करो, कालकी अंसख जुदी अनूहको थोक है॥ समयादि परजाय जीव पुदगलहीके, परिनामनिसों परगटत सुतोक है।

काजरकी रेनुकरि भरी कजरौटी जथा, तथा वृंद लोकमें विराजै दर्वथोक है ॥ ५३ ॥

दोहा ।

धर्माधर्म दरव दोऊ, गति थितिके सहकार ।
ये दोनों जहँ लगु सोई, लोकसीम निरधार ॥ ५४ ॥

(११)

दोहा ।

ज्यों नभके परदेश है, त्यों औरनिके मान ।
अपदेशी परमानु ते, होत प्रदेश प्रमान ॥ ५५ ॥

मनहरण ।

एक परमानूके बराबर अकाश छेत्र, ताहीको प्रदेश नाम ज्ञानी सिद्ध करी है । परमानु आप अपदेशी है सुभावही-तै, सूछिम न यातै और ऐसी दिढतरी है ॥ ताही परदेश-तै अनंत परदेशी नभ, धर्माधर्म एक जीव असंख प्रसरी है । ऐसे परदेशको प्रमान औ विधान कह्यौ, स्वामी कुंदकुंद वृंद वंदै मोह भरी है ॥ ५६ ॥

प्रश्न–दोहा ।

नभ पुनि धर्माधर्मके, कहे प्रदेश जितेक ।
सो तो हम सरधा करी, ये अखंड थिर टेक ॥ ५७ ॥
जीव अमूरत तन धरै, तासु असंख प्रदेस ।
सो कैसेकरि संभवै, लघु दीरघ जसु भेस ॥ ५८ ॥

उत्तर ।

संकोचन अरु विस्तरन, दोइ शकति जियमाहिं ।
जहँ जैसे तनको धरै, तहँ तैसो ह्वै जाहि ॥ ५९ ॥
ज्यों दीपक परदेशकरि, जो कछु धरत प्रमान ।
लघु दीरघ ढकना ढकै, तजत न अपनो बान ॥ ६० ॥
बालक वयतै तरुन जब, होत प्रगट यह देह ।
बढत प्रदेश समेत तन, यामें कह संदेह ॥ ६१ ॥
थूल अंग रुज संगतै, जासु कृशित व्है जात ।
तहँ प्रदेश सकोचता, विदित विलोको भ्रात ॥ ६२ ॥

(१२)

मनहरण ।

कालानू दरव अप्रदेशी है असंख अनू, मिलन सुभावके सरवथा अभावतै । सो प्रदेश मात्र पुग्गलानूके निमित्तसेती, सबै पर्जे प्रगटिकै वर्तत वतावतै । आकाशके एक परदेश-तै दुतीयपर, जवै पुग्गलानु चलै मदगति दावतै । ऐसे निश्चै विवहारकालको सरूप भेद, ज्ञानी जीव जानिके प्रतीत चित लावते ॥ ६३ ॥

दोहा ।

लोकाकाश प्रदेश प्रति, कालानू परिपूर ।
है असंख निरबाध नित, मिलन शकतितै दूर ॥ ६४ ॥
ताही एक प्रदेशतै, जब पुदगल परमानु ।
चलै मंदगति दुतियपर, तब सो समय वखान ॥ ६५ ॥

याही समय प्रमानकरि, है ध्रुव वय उतपाद ।
वरतमान सब दरवमें, विवहारिक मरजाद ॥ ६६ ॥

(१३)

मनहरण ।

एक कालअनूतै दुतीय कालअनूपर, जात जवै पुग्गलानु मंदगति करिकै । तामें जो विलंब होत सोई काल दरवको, समै नाम परजाय जानो भर्म हरिकै ॥ ताके पुव्व परे जो पदारथ है नित्तभूत, सोई काल दरव है ध्रौव धर्म धरिकै ॥ समय परजाय उतपाद वयरूप कहे, ऐसे सरधान करो शंका परिहरिकै ॥ ६७ ॥

दोहा ।

जो अखंड ब्रहमंडवत, काल दरवहू होत ।
समय नाम परजाय तव, कवहुं न होत उदोत ॥ ६८ ॥
भिन्न भिन्न कालानु जब, अमिल सु....भी होय ।
गनितरीतिगत कर्ममें, तब ही बनै बनोय ॥ ६९ ॥
इक कालानू छांड़िकै, जब दुतीयपर जात ।
पुग्गलानु गति मद करि, तब सो समय कहात ॥ ७० ॥
सो निरंश अति सूक्ष्म है, काल दरवकी पर्ज ।
याहीतै क्रम चढ़ि वढ़त, सागरांत लगु सर्ज ॥ ७१ ॥

प्रश्न—

पुग्गलानु गति शीघ्र करि, चौदहराजू जात ।
समय एकमें हे सुगुरु, यह तो वात विख्यात ॥ ७२ ॥

तहां सपरसत कालके, अनु असंख मगमाहिं ।
याहूमें शंका नहीं, श्रेणीबद्ध रहाहिं ॥ ७३ ॥
पुव्वापरके भेदतै, समयमाहिं तित भेद ।
असंख्यात क्यों नहि कहत, यामें कहा निषेद ॥ ७४ ॥

उत्तर—

जिमि प्रदेश आकाशको, परमानू परमान ।
अति सूच्छिम निरअंश है, मापन गज परधान ॥ ७५ ॥
ताहीमें नित वसत है, अनु अनंतको खंध ।
अंश अनंत न होत तसु, लहि तिनको सनबंध ॥ ७६ ॥
यह अवगाहन शकतिकी, है विशेषता रीत ।
तिमि तित गति परिनामकी, है विचित्रता मीत ॥ ७७ ॥
समय निरंश सरूप है, वीजभूत मरजाद ।
सरव दरव परवरतई, धुव वय पुनि उतपाद ॥ ७८ ॥

(१४)

मनहरण ।

एक पुग्गलानु अविभागी जिते आकाशमें, वैठे सोई अकाशको प्रदेश बखान है। ताही परदेशमाहिं और पंच द्रव्यनिके, प्रदेशको थान दान देइवेको वान है ॥ तथा पर्म सूच्छिम प्रमानके अनंत खंध, तेऊ ताही थानमें विराजै थिति ठान है। निराबाध सर्व निज निज गुन पर्ज लिये, ऐसी अवगाहनकी शकति प्रधान है ॥ ७९ ॥

प्रश्न—छन्द नराच ।

अकाश दर्व तो अखंड एकरूप राजई ।
सु ताखुमें प्रदेश अंशभेद क्यों विराजई ॥
अखंड वस्तुमाहि अंशकल्पना बनै नही ।
करै सुशिष्य प्रश्न ताहि श्रीगुरू कहै यही ॥ ८० ॥

उत्तर—दोहा ।

निरविभाग इक वस्तुमें, अंश कल्पना होय ।
नय विवहार अधारतै, लगै न बाधा कोय ॥ ८१ ॥
निजकरकी दो आंगुरी, नभमें देखि उठाव ।
क्षेत्र दोउको एक है, कै दो जुदे बताव ॥ ८२ ॥
जो कहि है की एक है, तो कहु कौन अपेच्छ ।
एक अखड अकाशकी, कै अंशनिके सेच्छ ॥ ८३ ॥
जो कहि है नभपच्छ गहि, तब तौ साची बात ।
जो अशनिकरि एक कहि, तब विरोध दरसात ॥ ८४ ॥
इक अंगुरीके छेत्रसों, दूजेसों नहि मेल ।
अंश अपेच्छा इक कहें, यह लैरिकनिको[1] खेल ॥ ८५ ॥
जुदे जुदे जो अश कहि, नभ अखडता त्याग ।
तौ प्रति अंश असंख नभ, चहियत तितौ विभाग ॥ ८६
तातै नय विवहारतै, अंश कथा उर आन ।
कारज विदित विलोकिकै, जिन आगम परमान ॥ ८७ ॥

---

1 बालकोंका ।

(१५)

मनहरण ।

काल विना बाकी पंच दर्वनिके परदेश, ऐसे जैनवैनसों प्रतीति कीजियतु है। एक तथा दोय वा अनेक विधि संख्या लियै, अथवा असख तक चित दीजियतु है॥ ताके आगे अनत प्रदेश लगु भेद वृंद, जथाजोग सबमें विचार लीजियतु है। काल दर्व एक ही प्रदेशमात्र राजतु है, ऐसो सरधान सुद्ध सुधा पीजियतु है॥ ८८॥

अकाशके अनंत प्रदेश है अचल तैसे, धर्माधर्म दोऊके असंख थिर थपा है। एक जीव दर्वके असंख परदेश कहे, सो तो घटै वढै जथा देह ढापै ढपा है॥ एक पुग्गलानु है प्रदेश मात्र दर्व तऊ, मिलन सुभावसो वढावै वश अपा[1] है। सख्यासंख्य अनत विभेद लगु ऐसें पंच, दर्वके प्रदेशको अनादि नाप नपा है॥ ८९॥

दोहा।

जिनके बहुत प्रदेश है, तिर्यकप्रचई[2] सोय।
सो पाचो ही दरवमें, व्यापत है भ्रम खोय॥ ९०॥
कालानूमें मिलनकी, शक्ति नाहि तिस हेत।
तिर्यक परचैके विषै, गनती नाहि करेत॥ ९१॥
समयनिके समुदायको, ऊरधपरचै[3] नाम।
सो यह सब दरवनिविषै, व्यापत है अभिराम॥ ९२॥

१ अपना। २ प्रचय—समूह। ३ ऊर्ध्वप्रचय।

प्रश्न–छन्द नराच ।

अकाश दर्व तो अखंड एकरूप राजई ।
सु ताखुमें प्रदेश अंशभेद क्यों विराजई ॥
अखंड वस्तुमाहिं अंशकल्पना बनै नही ।
करै सुशिष्य प्रश्न ताहि श्रीगुरू कहै यही ॥ ८० ॥

उत्तर–दोहा ।

निरविभाग इक वस्तुमें, अंश कल्पना होय ।
नय विवहार अधारतै, लगै न बाधा कोय ॥ ८१ ॥
निजकरकी दो आंगुरी, नभमें देखि उठाव ।
क्षेत्र दोउको एक है, कै दो जुदे बताव ॥ ८२ ॥
जो कहि है की एक है, तो कहु कौन अपेच्छ ।
एक अखंड अकाशकी, कै अंशनिके सेच्छ ॥ ८३ ॥
जो कहि है नभपच्छ गहि, तब तौ सांची बात ।
जो अंशनिकरि एक कहि, तब विरोध दरसात ॥ ८४ ॥
इक अंगुरीके छेत्रसों, दूजेसों नहि मेल ।
अंश अपेच्छा इक कहें, यह लैरिकनिको खेल ॥ ८५ ॥
जुदे जुदे जो अश कहि, नभ अखडता त्याग ।
तौ प्रति अंश असंख नभ, चहियत तितौ विभाग ॥ ८६
तातै नय विवहारतै, अंश कथा उर आन ।
कारज विदित विलोकिकै, जिन आगम परमान ॥ ८७ ॥

---

१ बालकोंका ।

(१५)

मनहरण ।

काल विना बाकी पंच दर्वनिके परदेश, ऐसे जैनवैनसों प्रतीति कीजियतु है । एक तथा दोय वा अनेक विधि संख्या लियै, अथवा असख तक चित दीजियतु है ॥ ताके आगे अनत प्रदेश लगु भेद वृंद, जथाजोग सबमें विचार लीजियतु है । काल दर्व एक ही प्रदेशमात्र राजतु है, ऐसो सरधान सुद्ध सुधा पीजियतु है ॥ ८८ ॥

अकाशके अनंत प्रदेश है अचल तैसे, धर्माधर्म दोऊके असंख थिर थपा है । एक जीव दर्वके असंख परदेश कहे, सो तो घटै बढ़ै जथा देह ढापै ढपा है ॥ एक पुग्गलानु है प्रदेश मात्र दर्व तऊ, मिलन सुभावसों बढावै वग अपा[1] है । सख्यासंख्य अनत विभेद लगु ऐसें पच, दर्वके प्रदेशको अनादि नाप नपा है ॥ ८९ ॥

दोहा ।

जिनके बहुत प्रदेश है, तिर्यकप्रचई[2] सोय ।
सो पाचो ही दरवमें, व्यापत है भ्रम खोय ॥ ९० ॥
कालानूमें मिलनकी, शकति नाहि तिस हेत ।
तिर्यक परचैके विषै, गनती नाहिं करेत ॥ ९१ ॥
समयनिके समुदायको, ऊरधँ[3]परचै नाम ।
सो यह सब दरवनिविषै, व्यापत है अभिराम ॥ ९२ ॥

---

१ अपना । २ प्रचय—समूह । ३ ऊर्ध्वप्रचय ।

काल दरवके निमित्तै, ऊरधपरचै होत ।
ताहीतैं सब दरवको, परनत होत उदोत ॥ ९३ ॥
पंचनिके ऊरधप्रचय, काल दरवतै जानु ।
कालमाहि ऊरधप्रचय, निजाधार परमानु ॥ ९४ ॥
तीरक[1]-परचै पांचमें, निजप्रदेश सरवंग ।
निजाधीन धारै सदा, जथाजोग बहुरंग ॥ ९५ ॥

(१६)

माधवी ।

जिस काल समैकहँ एक समै,—
महँ वै उतपाद विराजि रहा है ।
तब हू वह आपु सुभावविषै,
समवस्थित है ध्रुवरूप गहा है ॥
परजाय समै उपजै विनशै,
अनु पुग्गलकी गति रीति जेहा[2] है ।
यह लच्छन काल पदारथको,
सुविलच्छन श्रीगुरुदेव कहा है ॥ ९६ ॥

दोहा ।

कालदरवको क्यों कहो, उपजनविनशनरूप ।
समय परजहीकों कहो, वयउतपादसरूप ॥ ९७ ॥
ध्रौव दरवको छांड़िके, एकै समयमँझार ।
उतपत ध्रुव वय सधत नहिं, कीजै कोट विचार ॥९८॥

१ तिर्यक् प्रचय । २ यथा ।

उतपत अरु वयके विषै, राजत विदित विरोध ।
अंधकार परकाशवत, देखो निज घट शोध ॥ ९९ ॥
तातै कालानू दरव, ध्रौव गहोगे जब्ब ॥
निरावाध एकै समय, तीनों सधि है तब्ब ॥ १०० ॥

छप्पय ।

जब पुग्गल परमानु, पुव्वकालानु त्याग करि ।
अगिलीपर वह गमन करत, गति मद तासु धरि ॥
समय कहावत सोय, तहा आधार दरव गहु ।
तब तीनों निरवाध सधै, इक समयमाहिं वहु ॥
लखि निजकर अगुरी वक्र करि, एक समय तीनों दिखै ।
उतपाद वक्र वय सरलता, ध्रुव अँगुरी दोनों विखै॥१०१॥

(१७)

मनहरण ।

एकही समैमें उतपाद ध्रुव वय नाम, ऐसे तीनो अर्थनिको काल दर्व धारै है । निश्चैकरि यही सदभावरूप सत्ता लिये, निजाधीन निरावाध वर्तत उचारै है ॥ जैसे एक समैमें त्रिभेदरूप राजत है, तैसे सर्वकाल सर्व कालानू पसारै है । समै परजाय उतपाद वयरूप राजै, दर्वकी अपेच्छा ध्रुव धरम उदारै है ॥ १०२ ॥

(१८)

वस्तुको सरूप असतित्वको निवासभूत, सत्ता रसकूपको अधार परदेस है । ऐसो परदेस जाके येकौ नाँहि पाइये

तौ, विना परदेस कहो कैसो ताको भेस है ॥ सो तो परतच्छ ही अवस्तु शून्यरूप भयौ, कैसेकरि जाने ताके सामान्य विशेस है। अस्तिरूप वस्तुहीके होत उतपाद वय, गुन परजायमाहिं ऐसो उपदेस है ॥ १०३ ॥

दोहा ।

जो प्रदेशतैं रहित है, सो तो भयो अवस्त ।
ताके ध्रुव उतपाद वय, लोपित होत समस्त ॥ १०४ ॥
तातैं काल दरव गहो, अनुप्रदेश परमान ।
तब तामें तीनों सधै, निराबाध परधान ॥ १०५ ॥

मनहरण ।

केई कहै समय परजायहीको दर्व कहो, प्रदेशप्रमान कालअनू कहा करसै। समै ही अनादितैं निरंतर अनेक अंश, परजायसेती उतपाद-पद परसै ॥ तामें पुव्वको विनाश उत्तरको उतपाद, परजपरंपरा सोई ध्रौव धारा वरसै। ऐसे तीनों भेद भले सधे परजायहीमें, तासों स्यादवादी कहै यामें दोष दरसै ॥ १०६ ॥

गीता ।

जिस समयका है नाश तिसका, तो सरवथा नाश है ।
जिस समयका उतपाद सो, भी स्वतह[1] विनशत जात है ।
ध्रुव कौन इनमें है जिसे, आधार धरि होवै यही ।
यों कहत छिनछायी दरवमें, दोष लागैगो सही ॥ १०७ ॥

1 स्वत'—स्वयम् ।

दोहा ।

तातै कालानू दरव, अौव गहोगे जब्ब ।
निरावाध एकै समय, तीनों सधि है तब्ब ॥ १०८ ॥

मदावलिप्तकपोल ।

काल दरवमें जो प्रदेशको थापन कीना ।
तो असंख कालानु, भिन्न मति कहो प्रवीना ॥
कहो अखंडप्रदेश, लोकपरमान तासुकहँ ।
ताहीतै उतपन्न समय, परजाय कहो तहँ ॥ १०९ ॥

मनहरण ।

कालको अखड मानें समय नांहिं सिद्ध होत, समय परजाय तो तब ही उपजत है । जवै कालअनू भिन्न भिन्न होहिं सुभावतै, तहां पुग्गलानू जब्र चलै मंदगत है ॥ एकको उलंघि जब दूजे कालअनूपर, तामें जो विलंब लगै सोई समै जत है । अखडप्रदेशी मानै कैसे गतिरीति गनै, कैसे करै कालको प्रमान कहु सत है ॥ ११० ॥

दोहा ।

तातै कालानू दरव, भिन्न गहोगे जब्ब ।
निराबाध एकै समय, तीनों सधि है तब्ब ॥ १११ ॥
काल अखंडित मानतै, समयभेद मिटि जाय ।
तथा सरव परदेशतै, जगै समय परजाय ॥ ११२ ॥
तथा कालके है नहीं, तिर्यक—परचै रूप ।
एक यहू दूपन लगै, यों भाषी जिनभूप ॥ ११३ ॥

काल असंख अनून्हको, सुनो वरतना भेद ।
प्रथमहिं एक प्रदेशतै, वरततु है निरखेद ॥ ११४ ॥
पुनि तसु आगेकी अनू, तिनसों वर्तत सोय ।
पुनि तसु आगे और सो, वर्तत है अनु जोय ॥ ११५ ॥
असंख्यात अनु-रूपकरि, ऐसे वरतत नित्त ।
काल दरवकी वरतना, यों जिन भाषी मित्त ॥ ११६ ॥
याके ऊरध ऊरधै, होहि समय परजाय ।
सव दरवनिपर करत है, वर्त्तनमाहिं सहाय ॥ ११७ ॥

कवित्त (३१ मात्रा)

तातै तत्त्वारथके मरमी, तिनको प्रथमहिं यह उपदेश ॥
कालदरव परदेशमात्र है, ध्रौवप्रमान रूप तसु भेश ॥
नित्तभूत निरवाध असंखा, अनु अनमिलन सुभाव हमेश ।
ताहीकी परजाय समय है, यों भाषी सरवज्ञ जिनेश ॥११८॥

दोहा ।

मंगलमूल जिनिंदको, वंदों वारंवार ।
जसु प्रसाद पूरन भयो, वड़ो ज्ञेयअधिकार ॥ ११९ ॥

इति श्रीमत्कुन्दकुन्दाचार्यकृत परमागम श्रीप्रवचनसारजी ताकी वृन्दावनकृतभाषाविषै विशेषज्ञेयाधिकार नामा पाचमा अधिकार पूरा भया ।

इहा ताई सर्वगाथा १४६ और भाषाके छद सर्व ५८१ पाचसौ इक्यासी भये० सो समस्त जयवत होहु । मिती मार्गशीर्ष शुक्ल षष्ठी ६ शुक्रवारे सवत् १९०५ । काशीजीमें वृदावनने लिखी मूल प्रति । सो जयवत होहु ।

ओं नम सिद्धेभ्यः

अथ षष्ठ ज्ञेयतत्त्वान्तर्गत—व्यावहारिक-जीवद्रव्याधिकारः ।

मगलाचरण ।

दोहा ।

श्रीमत तीरथनाथ नमि, सुमरि सारदा संतं ।
जीवदरवको लिखत हो, विवहारिक विरतत ॥ १ ॥

(१)

मनहरण ।

सहित प्रदेश सर्व दर्व जामें पूरि रहे, ऐसो जो अकाश सो तो अनादि अनंत है। निंत्त नूतन निरावाध अकृत अमिट अनरच्छित सुभाव सिद्ध सर्वगतिवत है ॥ तिस पटदर्वजुत लोकको जो जानत है, सोई जीवदर्व जानो चेतनामहंत है। वही चार प्रानजुत जगतमें राजै वृंद, अनादि संवंध पुदगलको धरंत है ॥ २ ॥

दोहा ।

पंच दरव सव ज्ञेय है, ज्ञाता आतमराम ।
सो अनादि चहु प्रान जुत, जगमें कियो मुकाँम ॥ ३ ॥

(२)

इन्द्रीवल तिमि आयु पुनि, सासउसासरु प्रान ।
जीवनिके संसारमें, होहिं सदीव प्रमान ॥ ४ ॥

---

१ साधु—मुनि । २ नित्य—अविनाशी । ३ स्थिति ।

छप्पय ।

फास[1] जीभ नासिका, नैन श्रुति पंच अच्छ[2] गहु ।
काय वचन मन सु बल, तीन परतीति मान यहु ॥
आयु चार गति थिति, तथैव सासोउसास गनि ।
ये दशहूं विवहार-प्रान, जग जीवनिके भनि ॥
निहचैकरि सुख सत्ता तथा, अवबोधन चैतन्नता ।
यह चार प्रान धारैं सदा, सहज सुभाव अभिन्नता ॥ ५ ॥

(३)

मत्तगयन्द ।

जो जगमें निहचै करिके, धरि चार प्रकारके प्रान प्रधानो ।
जीवतु है पुनि जीवत थौ, अरु आगे हु पै वही जीवै निदानो ॥
सो वह जीव पदारथ है, चिनमूरति आनंदकंद सयानो ।
औ चहु[3] प्रान कहे वह तो, उपजे सब पुग्गलतैं परमानो ॥६॥

(४)

मनहरण ।

अनादितै पुग्गल प्रसंगसों चिदंगजूके, चढ्यो है कुढंग मोह रंग सरवंग है । ताही कर्मबंधसों निबद्ध चार प्रान-निसों, कर्मनिको उदैफल भोगै बहुरंग है ॥ तहां और नूतन करमको प्रबंध बधै, जातै मोह रागादि कुभावको तरंग है । ऐसे पुग्गलीक कर्म उदै जगजीवनिके, पुग्गलीक कर्मबंध उदैको प्रसंग है ॥ ७ ॥

---

१ स्पर्श । २ अक्ष—इन्द्रिया । ३ चउ—चार ।

दोहा।

कारनके सादृश जगत, कारज होत प्रमान।
तातैं पुदगल करमकरि, पुदगल बँधत निदान ॥ ८ ॥

(९)

द्रुमिला।

जगजीव निरंतर मोहरु दोष, कुभाव विकारनिको करिकै।
परजीवनिके चहु प्राननिको, विनिपात[1] करै अदया[2] धरिकै ॥
तबही निहचै दृढ़ कर्मनिसों, प्रतिवंधित होहिं सुधा भरिकै।
जसु भेद है ज्ञान-अवर्नको[3] आदिक, यों लखिये भ्रमको हरिकै॥९॥

दोहा।

मोहादिककरि आपनो, करत अमलगुन घात।
ता पीछे परप्रानको, करत मूढ़ विनिपात ॥ १० ॥
परप्राननिको घात तौ, होहु तथा मति होहु।
पै निज ज्ञान-प्रान तिन, निहचै घाते सोहु ॥ ११ ॥
तब ज्ञानावरनादि तहँ, बँधै करम दिढ़ आय।
प्रकृति प्रदेशनुभाग थिति; जथाजोग समुदाय ॥ १२ ॥

(६)

मत्तगयन्द।

कर्म महामलसों जगमें, जगजीव मलीन रहै तब ताईं।
चार प्रकारके प्राननिको, वह धारत वार हि वार तहाईं ॥

---

१ घात-नाश। २ निर्दयता-कठोरता। ३ ज्ञानावरणादि।

जावत देह प्रधानविषै, ममता-मतिको नहिं त्याग कराई ।
या विधि बंधविधान कथा, गुरुदेव जथारथ वृंद बताई ॥१३॥

दोहा ।

जावत[1] ममता भाव है, देहादिककेमाहिं ।
तावत[2] चार सुप्रान धरि, जगतमाहिं भरमाहिं ॥ १४ ॥
तातै ममताभावको, करो सरवथा त्याग ।
निज समतारसरंगमें, वृंदावन अनुराग ॥ १५ ॥

(७)

मत्तगयन्द ।

जो भवि इंद्रियआदि विजैकरि, ध्यावत शुद्धपयोग अभंगा ।
कर्मनिसों तजि राग रहै, निरलेप जथा जल कंज[3] प्रसंगा ॥
झांक-विहीन[4] जथा फटिकप्रभ, त्यों उर जोतकी वृंद तरंगा ।
क्यों मल प्रान बंधै वह तो, नित न्हात विशुद्ध-सुभाविक-गंगा ॥

माधवी ।

अपने असतित्व सुभावविषै, नित निश्चलरूप पदारथ जो है ।
चिनमूरत आप अमूरत जीव, असंख प्रदेश धरै वह तो है ॥
तिसके पर पुग्गलके परसंगतै, सो परजाय अनेकनि हो है ।
जसु संहननौर[5] अकार अनेक, प्रकार विभेद सुवेद भनो है॥१७

---

१ यावत्—जब तक । २ तावत्—तब तक । ३ कमल । ४ छायारहित । ५ सहनन+और ।

(८)

मनहरण ।

ससार अवस्थामाहिं जीवनिके निश्चैकरि, पुग्गलविपाकी नामकर्म उदै आयेतै। नर नारँकौर[1] तिरजंच देवगति विषै, जथाजोग देह वनै परजाय पायेतैं ॥ संसथान संहनन आदि वहु भेद जाके, पुग्गलदरवकरि रचित वतायेतै । जैसै एक आगि है अनेक रूप ईंधनतै, नानाकार तैसे तहा चेतन सुभायेतैं ॥ १८ ॥

(९)

मत्तगयन्द ।

जे भवि भेदविज्ञान धरै, सव दर्वनिको जुत भेद सुजानै ।
जे अपनो सदभाव धरै, निज भावविषै थिर है परधानै ॥
द्रव्य गुनौ परजायमई, तिनको ध्रुव वै[2] उतपाद पिछानै ॥
सो परदर्वविषै कवहू नहिं, मोहित होत सुवुद्धिनिधानै ॥१९॥

मनहरण ।

जानै काललब्ध पाय दर्श मोहको खिपाय, उपशमवाय वा सुश्रद्धा यों लहाही है। मेरो चिदानंदको दरव गुन परजाय, उतपाद वय ध्रुव सदा मेरे पाहीं है ॥ और परदर्व सर्व निज निज सत्ताहीमें, कोऊ दर्व काहूको सुभाव न गहाही है। तातै जो प्रगट यह देह खेह[3]-खान दीसै, सो तो मेरो रूप कहूं नाहीं नाहीं नाहीं है ॥ २० ॥

---

१ नारक+और। २ व्यय—नाश। ३ मल्की खानि।

(१०)

द्रुमिला ।

उपयोगसरूप चिदातम सो, उपयोग दुधा[1] छबि छाजत है ।
नित जानन देखन भेद लिये, सो शुभाशुभ होय विराजत है ॥
तिनही करि कर्मप्रबंध बँधै, इमि श्रीजिनकी धुनि गाजत है ।
जब आपमें आपुहि बाजत है, तब श्यौपुर[2] नौवत वाजत है२१

(११)

मनहरण ।

जब इस आतमाके पूजा दान शील तप, संजम क्रियादि-रूप शुभ उपयोग है । तब शुभ आयु नाम गोत पुन्यवर्ग-नाको, कर्मपिंड बँधै यह सहज नियोग है ॥ अथवा मिथ्या-तविषै अव्रत कषायरूप, अशुभोपयोग भये पापको सँजोग है । दोऊके अभावतैं विशुद्ध उपयोग वृंद, तहां बंध खंडके अखंड सुख भोग है ॥ २२ ॥

मत्तगयन्द ।

जो जन श्रीजिनदेवको जानत, प्रीतिसों वृंद तहां लव लावै ।
सिद्धनिको निज ज्ञानतैं देखिकै, ध्यापक होयके ध्यानमें ध्यावै॥
औ अनगार[3] गुरूनिमें भक्ति, दया सब जीवनिमाहिं दिढावै ।
ताकहँ श्रीगुरुदेव वखानत, सो शुभरूपपयोग[4] कहावै ॥ २३ ॥

---

१ द्विधा—दो प्रकार । २ शिवपुर—मोक्ष । ३ दिगम्बर । ४ शुभोपयोग ।

(१२)

मनहरण ।

इंद्रिनिके विषै और क्रोधादि कषायनिमें, जाको परिनाम अवगाढ़ागाढ़ रुखिया । मिथ्याशास्त्र सुनै सदा चित्तमें कुभाव गुनै, दुष्ट संग रंगको उमंग रस चुखिया । जीवनिके घातवेको जतन करत नित, कुमारग चलिवेमें उग्रमुख मुखिया । ऐसो उपयोग सोई अशुभ कहावत है, जाके उर-वसै वह कैसे होय सुखिया ॥ २४ ॥

(१३)

मत्तगयद ।

मै निज ज्ञानसरूप चिदातम, ताहि सुध्यावत हौं अग टारी ।
भाव शुभाशुभ वंधके कारन, तातै तिन्है तजि दीनों विचारी ॥
होय मधस्थ विराजत हौं, परदर्वविषै ममता परिहारी ।
सो सुख क्यों मुखसों वरनौ,जो चखै सो लखै यह वात हमारी २५

दोहा ।

तातै यह उपदेश अव, सुनो भविक वुधिवान ।
उद्दिम करि जिन वचन सुनि, ल्यो निजरूप पिछान ॥ २६ ॥
ताहीको अनुभव करो. तजि प्रमाद उनमाद ।
देखो तो तिहि अनुभवत. कैसो उपजत स्वाद ॥ २७ ॥
जाके स्वादत ही तुम्हें. मिलै अतुल सुख पर्म ।
पुनि शिवपुरमें जाहुगे. परिहरि अरि वसु कर्म ॥ २८ ॥

---

१ उद्यम ।

(१०)

द्रुमिला ।

उपयोगसरूप चिदातम सो, उपयोग दुधा[1] छबि छाजत है ।
नित जानन देखन भेद लिये, सो शुभाशुभ होय विराजत है ॥
तिनही करि कर्मप्रबंध बँधै, इमि श्रीजिनकी धुनि गाजत है ।
जब आपमें आपुहि बाजत है, तब श्यौपुर[2] नौबत बाजत है२१

(११)

मनहरण ।

जब इस आतमाके पूजा दान शील तप, संजम क्रियादि-रूप शुभ उपयोग है । तब शुभ आयु नाम गोत पुन्यवर्ग-नाको, कर्मपिंड बँधै यह सहज नियोग है ॥ अथवा मिथ्या-तविषै अव्रत कषायरूप, अशुभोपयोग भये पापको सँजोग है । दोऊके अभावतै विशुद्ध उपयोग वृंद, तहां बंध खंडके अखंड सुख भोग है ॥ २२ ॥

मत्तगयन्द ।

जो जन श्रीजिनदेवको जानत, प्रीतिसों वृंद तहां लव लावै ।
सिद्धनिको निज ज्ञानतै देखिकै, ध्यापक होयके ध्यानमें ध्यावै॥
औ अँ[3]नगार गुरूनिमें भक्ति, दया सब जीवनिमाहि दिढ़ावै ।
ताकहँ श्रीगुरुदेव वखानत, सो शुभँ[4]रूपपयोग कहावै ॥ २३ ॥

---

१ द्विधा–दो प्रकार । २ शिवपुर–मोक्ष । ३ दिगम्बर। ४ शुभोपयोग ।

(१२)

मनहरण ।

इंद्रिनिके विषै और क्रोधादि कषायनिमें, जाको परिनाम अवगाढ़ागाढ़ रुखिया । मिथ्याशास्त्र सुनै सदा चित्तमें कुभाव गुनै, दुष्ट संग रंगको उमंग रस चुखिया । जीवनिके घातवेको जतन करत नित, कुमारग चलिवेमें उग्रमुख मुखिया । ऐसो उपयोग सोई अशुभ कहावत है, जाके उर-वसै वह कैसे होय सुखिया ॥ २४ ॥

(१३)

मत्तगयद ।

मै निज ज्ञानसरूप चिदातम, ताहि सुध्यावत हौ अग टारी ।
भाव शुभाशुभ बंधके कारन, तातै तिन्है तजि दीनों विचारी ॥
होय मधस्थ विराजत हौ, परदर्वविषै ममता परिहारी ।
सो सुख क्यों मुखसों वरनौ,जो चखै सो लखै यह बात हमारी २५

दोहा ।

तातैं यह उपदेश अब, सुनो भविक बुधिवान ।
उद्दिम[1] करि जिन वचन सुनि, ल्यो निजरूप पिछान ॥ २६ ॥
ताहीको अनुभव करो, तजि प्रमाद उनमाद ।
देखो तो तिहि अनुभवत, कैसो उपजत स्वाद ॥ २७ ॥
जाके स्वादत ही तुम्हें, मिलै अतुल सुख पर्म ।
पुनि शिवपुरमें जाहुगे, परिहरि अरि वसु कर्म ॥ २८ ॥

---

१ उद्यम ।

अचेतन औ मूरतीक जड दर्व, मेरो चिच्चमतकार जोत है चकासतो । तातै मै शरीर नाहिं करता हू ताको नाहिं, मैं तो चिदानद वृंद अमूरत सासतो ॥ ३३ ॥

(१७)

अप्रदेशी अनू परदेशपरमान दर्व, सो तो स्वयमेव शब्द-परजैरहत है । तामै चिकनाई वा रुखाई परिनाम वसै, सोई वध जोग भाव तासमें कहत है ॥ ताहीसेती दोय आदि अनेक प्रदेशनिकी, दशाको वढावत सुपावत महत है । ऐसे पुदगलको सुपिडरूप खंध वँधै, यासो चिदानंदकंद जुदोई लहत है ॥ ३४ ॥

दोहा ।

अविभागी परमानु वह, शुद्ध दरव है सोय ।
वरनादिक गुन पच तो, सदा धरै ही होय ॥ ३५ ॥
एक वरन इक गन्ध इक, रस दो फासमँझार ।
अतर भेदनिमें धरे, श्रुति लखि लेहु विचार ॥ ३६ ॥

(१८)

मनहरण ।

पुग्गलैअनूमें चिकनाई वा रुखाई भाव, एक अंशतै लगाय भाषे भेदरास है । एकै एक वढत अनंत लौ विभेद वढै, जातै परिनामकी शकति ताके पास है ॥ जैसे छेरी गाय

१ पर्याय-रहित । २ स्पर्शमें । ३ पुद्गलाणुमे ।

एक अनू इक अशजुत, दुतिय तीनजुत होय ।
जदपि जोग है बंधके, तदपि बंधै नहिं सोय ॥ ४३ ॥
एक अंश अति जघन है, सो नहिं बधै कदाप ।
नेमरूप यह कथन है, श्रीजिन भाषी आप ॥ ४४ ॥

(२०)

मनहरण ।

चीकन सुभाव दोय अंश परनई अनू, ताको बंध चार अंशवालीहीसों होत है । और जो रुखाई तीन अंश अनू धारे होय, पंच अशवालीसेती वाको बंध वोत(?)है॥ ऐसे ही अनंत लगु भेद सम विषमके, दोय अंश अधिकतें बंधको उदोत है । रुच्छचीकनीहू बँधे खंधहूसों खंध बँधे, याही रीतिसेती लखै ज्ञानी ज्ञान जोत है ॥ ४५ ॥

दोहा ।

चीकनकी सम अंशतैं, विषम अंशतै रुच्छ ।
दोय अधिक होतें बँधै, पुग्गलानुके गुच्छ ॥ ४६ ॥
चीकनता गुनकी अनू, पांच अंशजुत जौन ।
सात अंश चीकन मिलै, बंध होतु है तौन ॥ ४७ ॥
चार अंशजुत रुच्छसों, षट जुतसों बँध जात ।
याही भाति अनंत लगु, जानों भेद विख्यात ॥४८॥
दोय अनू अंशनि गिनै, होहिं बराबर जेह ।
ताको बंध बँधै नहीं, यों जिनवैन भनेह ॥ ४९ ॥

भैंस ऊंटनीके दूध घृत, तामें चिकनाई वृद्धि क्रमतैं प्रकास है । धूलि राख[1] रेतकी रुखाईमें विभेद जैसे, तैसे दोनों भावमें अनंत भेद भास है ॥ ३७ ॥

(१९)

मनहरण ।

पुग्गलकी अनू चीकनाई वा रुखाईरूप, आपने सुभाव परिनाम होय परनी[2] । अंशनिकी संख्या तामें सम वा विषम होय, दोय अंश बाढहीसों बंधजोग वरनी ॥ एक अंश घटे बढ़े बँधत कदापि नाहिं, ऐसो नेम निहचै प्रतीति उर धरनी । चीकन रुखाई अनुखंध हू बँधत ऐसे, आगमप्रमानतैं प्रमान वृंद करनी ॥ ३८ ॥

दोहा ।

दोय चार षट आठ दश, इत्यादिक सम जान ।
तीन पांच पुनि सात नव, यह क्रम विषम बखान ॥३९॥
चीकनताईकी अनू, सम अंशनि परमान ।
दोय अधिक होतें बंधै, यह प्रतीत उर आन ॥ ४० ॥
रुच्छ[3] भावकी जे अनू, ते विषमंश प्रधान ।
दोय अधिकतै बँधत है, ऐसें लखो सयान ॥ ४१ ॥
अथवा चीकन रूक्षको, बंध परस्पर होय ।
दोय अंशकी अधिकता, जोग मिलै जब सोय ॥ ४२ ॥

---

१ भस्म । २ परिणमन किया, परिनमी । ३ रूक्ष ।

एक अनू इक अंशजुत, दुतिय तीनजुत होय।
जदपि जोग है बंधके, तदपि बंधै नहिं सोय ॥ ४३ ॥
एक अंश अति जघन है, सो नहिं बंधै कदाप।
नेमरूप यह कथन है, श्रीजिन भाषी आप ॥ ४४ ॥

(२०)

मनहरण।

चीकन सुभाव दोय अंश परनई अनू, ताको बंध चार अंशवालीहीसों होत है। और जो रुखाई तीन अंश अनू धारे होय, पंच अंशवालीसेती वाको बंध वोत(१)है॥ ऐसे ही अनंत लगु भेद सम विषमके, दोय अंश अधिकतै बंधको उदोत है। रुच्छचीकनीहू बँधै खंधहूसों खंध बँधै, याही रीतिसेती लखै ज्ञानी ज्ञान जोत है ॥ ४५ ॥

दोहा।

चीकनकी सम अंशतैं, विषम अंशतै रुच्छ।
दोय अधिक होतें बँधै, पुग्गलानुके गुच्छ ॥ ४६ ॥
चीकनता गुनकी अनू, पांच अंशजुत जौन।
सात अंश चीकन मिलै, बंध होतु है तौन ॥ ४७ ॥
चार अंशजुत रुच्छसों, षट जुतसों बँध जात।
याही भाति अनंत लगु, जानों भेद विख्यात ॥४८॥
दोय अनू अंशनि गिनै, होहिं बरावर जेह।
ताको बंध बँधै नहीं, यों जिनवैन भनेह ॥ ४९ ॥

(२१)

छप्पय ।

दो प्रदेश आदिक अनंत, परमानु खंध लग ।
सूच्छिम वादररूप, जिते आकार धरे जग ॥
तथा अवनि जल अनल, अनिल परजाय विविधगन ।
ते सब निंघ रु रुच्छ, सुभावहितै उपजे भन ॥
यह पुदगलदरवरचित सरव, पुग्गल करता जानिये ।
चिनमूरति यातै भिन्न है, ताहि तुरित पहिचानिये ॥ ५० ॥

(२२)

मनहरण ।

लोकाकाशके असंख प्रदेश प्रदेश प्रति, कारमानवर्गना भरी है पुदगलकी । सूच्छिम और वादर अनंतानंत सर्वठौर, अति अवगाढागाढ़ संधिमाहिं झलकी ॥ आठ कर्मरूप परिनमन सुभाव लिये, आतमाके गहन करन जोग बलकी । तेईस विकार उपयोगको सँजोग पाय, कर्मपिंड होय बँधे रहै संग ललकी ॥ ५१ ॥

दोहा ।

तातै पुदगल करमको, आतम करता नाहिं ।
भूल भावतै जीवकै, करम धूलि लपटाहिं ॥ ५२ ॥

(२३)

मनहरण ।

कर्मरूप होनकी सुभावशक्ति जामै वसै, ऐसे जे जगत-

१ स्निग्ध—चिकना ।

माहिं पुग्गलके खंध है। तेई जब जगतनिवासी जग जीव-निके, परिनाम अशुद्धको पावै सनबंध है॥ तबै ताई काल कर्मरूप परिनवै सोई, ऐसो वृंद अनादितै चलो आवै धंध है। ते वै कर्मपिंड आतमाने प्रनवाये नाहिं, पुग्गलके खंध-हीसों पुग्गलको बंध है॥ ५३॥

(२४)

जे जे दर्वकर्म परिनये रहे पुग्गलके, कारमानवर्गना सुशक्ति गुप्त धरिके। तेई फेर जीवके शरीराकार होहि सब, देहांतर जोग पाये शक्त व्यक्त करिके॥ जैसे वटबीजमें सुभाव शक्ति वृच्छकी सो, वटाकार होत वही शक्तिको उछ-रिके। ऐसे दर्वकर्म बीजरूप लखो **वृंदावन**, ताहीको सुफल देह जानों भर्म हरिके॥ ५४॥

(२५)

औदारिक देह जो विराजै नरतीरकके[1], नानाभांति तासके अकारकी है रचना। तथा वैयक्रीयक[2] शरीर देवनारकीके, जथाजोग ताहूके अकारकी है खचना॥ तैजस शरीर जो शुभाशुभ विभेद औ, अहारक तथैव कारमानकी विरचना। ये तो सर्व पुग्गल दरवके बने है पिंड, यातै चिदानंद भिन्न ताहीसों परचना॥ ५५॥

---

१ नर—तिर्यचके। २ वैक्रियक।

(२६)

अहो भव्यजीव तुम आतमाको ऐसो जानो, जाके रस रूप गंध फास नाहिं पाइये । शब्द परजायसों रहित नित राजत है, अलिंगग्रहन निराकार दरसाइये ॥ चेतना सुभाव-हीमें राजै तिहूंकाल सदा, आनंदको कंद जगवंद वृंद ध्याइये । भेदज्ञान नैनतै निहारिये जतनहीसों, ताके अनुभव रसहीमें झर लाइये ॥ ५६ ॥

दोहा ।

शब्द अलिंगग्गहन गुरु, लिख्यौ जु गाथामाहिं ।
कछुक अरथ तसु लिखत हों, जुगतागमकी छाँहिं ॥५७॥

चौपाई ।

चिह्न सुपुदगलके हैं जिते । फरस रूप रस गंध जु तिते ।
तिन करि तासु लखिय नहिं चिहन । याहूतैं सु अलिंगग्गहन॥५८
अथवा तीन लिंग जगमाहिं । नारि नपुंसक नर ठहराहिं ।
ताहूकरि न लखिय तसु चिहन । याहूतैं सु अलिंगग्गहन ॥५९॥
अथवा लिंग जु इंद्रिय पंच । ताहूकरि न लखिय तिहि रंच ।
अतिइंद्रियकरि जानन सहन । याहूतैं सु अलिंगग्गहन ॥६०॥
अथवा इंद्रियजनित जु ज्ञान । ताकरि है न प्रतच्छ प्रमान ।
की है आतमको यह चिहन । याहूतैं सु अलिंगग्गहन ॥६१॥
अथवा लिंग नाम यह जुप्त । लच्छन प्रगट लच्छ जसु गुप्त ।
धूम अग्नि जिमि तिमि नहिं चिहन। याहूतै सु अलिंगग्गहन॥६२॥

अथवा आनमती बहु बकै । दोषसहित लच्छन अन तकै ।
ताहूकरि न लखिय तसु चिहन । याहूतै सु अलिंगग्गहन ॥६३॥
इत्यादिक बहु अरथविधान । शब्द अलिंगगहनको जान ।
सो विशालटीकातै देखि । पंडित मनमें दियौ विशेखि ॥६४॥
यह चेतन चिद्रूप अनूप । शुद्ध सुभाव सुधारसकूप ।
स्वसंवेदनहिकरि सो गम्य । लखहिं अनुभवी समरसरम्य ॥६५॥
शब्दब्रह्मको पाय सहाय । करि उद्दिम मन वचनन काय ।
काल लब्धिको लहि संजोग । पावै निकटभव्य ही लोग॥६६॥
तातैं गुन अनंतको धाम । वचनअगोचर आतमराम ॥
वृंदावन उर नयन उघारि । देखो ज्ञानजोति अविकारि ॥६७॥

(२७)

मनहरण ।

मूरतीक रूप आदि गुनको धरैया यह, पुग्गल दरवसों फरस आदिवानसों । आपुसमें बंधै नाना भांति परमानू खंध, सो तो हम जानी सरधानी परमानसों ॥ तासों विपरीत जो अमूरत चिदातमा सो, कैसे बँधै पुग्गल दरव मूर्तिमानसों । यह तौ अचंभौ मोहि ऐसो प्रतिभासै **वृंद**, अमल मिलाप ज्यों **"नितंब जुरैं कानसों"** ॥ ६८ ॥

(२८)

रूपादिक जे है मूरतीक गुन पुग्गलके, तिनसों रहित

जीव सर्वथा प्रमानसों । ऐसो है तथापि वह शून्यरूप होत-नाहिं, आपनी सुसत्तामें विराजै परधानसों ॥ सर्व दर्व सदा निज दर्वित आकार धरे, काहूको आकार कभी मिलै नाहिं आनसों । तैसे ही अरूपी चिदाकार वृंद आतमा है, ताके अब सुनो जैसे बँधत विधानसों ॥ ६९ ॥

रूपी दर्व घटपट आदिक अनेक तथा, ताके गुनपर-जाय विविध वितानसों । तिनको अरूपी जीव देखै जानै भलीभांत, यह तो अबाध सिद्ध प्रतच्छ प्रमानसों ॥ जो न होत अस्तरूप वस्त यह आतमा तौ, कैसे ताहि देखतौ औ जानतौ महानसों ॥ तैसे ताके बंधको विधान हू सुजानौ वृंद, समिल मिलाप ज्यों **"शबद जुरैं कानसों"** ॥ ७० ॥

दोहा ।

देखन जाननकी शकति, जो न जीवमहँ होत ।
तब किहि विधि संसारमें, बंधन होत उदोत ॥ ७१ ॥
मोह राग रुष भावकरि, देखत जानत जीव ।
ताही भावविकारसों, आपु हि बँधत सदीव ॥ ७२ ॥
राग चिकनताई भई, दोष रुच्छता भाय ।
याहीके सुनिमित्ततै, पुदगलकरम बँधाय ॥ ७३ ॥
आतमके परदेश प्रति, दर्वित कर्म अनाद ।
तिनसों नूतन करमको, बंध परत निरवाद ॥ ७४ ॥
यह विवहारिक बंधविधि, निहचै बंध न सोय ।
जहँ अशुद्ध उपयोग है, मोह त्रिकंटक जोय ॥ ७५ ॥

मनहरण ।

जैसे ग्वालबालगन बैल सांचे माटीनिके, देखि जानि तिन्हें अपनाये राग जोरसों । तिनके निकट कोऊ मारै छोरै बैलनिको, तबै ते अधीर होय रोवै धोवै शोरसों ॥ तहां अब करो तो विचार भेदज्ञानी वृंद, बंधे वे वयल सो की ममताकी डोरसों । तैसें पुदगल कर्म वाहिज निमित्त जानो, बंध्यौ जीव निहचै अशुद्धता-मरोरसों ॥ ७६ ॥

(२९)

माधवी ।

उपयोगसरूप चिदातम सो, इन इंद्रिनिकी सतसंगति पाई ।
बहु भातिके इष्ट अनिष्टविषै, तिनको तित जोग मिलै जब आई ॥
तब राग रु दोष विमोह विभावनि,-सों तिनमें प्रनवै लपटाई ।
तिनहीकरि फेरि बंधे तहँ आपु, यों भाविकबंधकी रीति बताई७७

(३०)

मनहरण ।

रागादि विभावनिमें जौन भावकरि जीव, देखै जानै इंद्रिनिके विषय जे आये है । ताही भावनिसों तामें तदाकार होय रमै, तासों फेरि बँधै यही भाववंध भाये है ॥ सोई भाववंध मानों चीकन रुखाई भयो, ताहीके निमित्तसेती दर्ववंध गाये है । जामें आठ कर्मरूप कारमानवर्गना है, ऐसे सरवज्ञ भनि वृंदको बताये हैं ॥ ७८ ॥

(३१)

पुव्वबंध पुग्गलसों फरस विभेदकरि, नयो कर्मवर्गनाके पिंडको गथन है । जीवके अशुद्ध उपयोग रागआदिकरि, होत मोह रागादि विभावको नथन है ॥ दोऊको परस्पर सँ-जोग एक थान सोई, जीव पुग्गलातमके बंधको कथन है । ऐसे तीन बंधभेद वेदमें निवेद वृंद, भेदज्ञानीजनित सिद्धांतको मथन है ॥ ७९ ॥

(३२)

असंख्यात प्रदेश प्रमान यह आतमा सो, ताके परदेश विषै ऐसे उर आनिये । पुग्गलीक कारमान वर्ग्गनाको पिंड आय, करत प्रवेश जथाजोग सरधानिये ॥ फेरि एक छेत्र अवगाहकरि बंधत है, थिति परमान संग रहै ते सुजानिये । देय निज रस खिर जाहिं पुनि आपुहिसों, ऐसो भेद भर्म छेद भव्य वृंद मानिये ॥ ८० ॥

दोहा ।

कायवचनमन जोगकरि, जो आतम परदेस ।
कंपरूप होवै तहां, जोग बंध कहि तेस ॥ ८१ ॥
तासु निमिततैं आवही, करमवरगनाखंध ।
सो ईर्यापथ नाम कहि, प्रकृति प्रदेश सुबंध ॥ ८२ ॥
रागविरोध विमोहके, जैसे भाव रहाहिं ।
ताहीके अनुसारतै, थिति अनुभाग बँधाहिं ॥ ८३ ॥

(३३)

द्रुमिला ।

परदर्वविषैं अनुराग धरै, वसु कर्मनिको सोइ बंध करै ।
अरु जो जिय रागविकार तजै, वह मुक्तबधूकहँ बेगि बरै ॥
यह बंध रु मोच्छसरूप जथारथ, थोरहिमें निरधार धरै ।
निहचै करिके जगजीवनिके, तुम जानहु वृंद प्रतीत भरै ॥८४॥

चौपाई ।

रागभाव प्रनवै जे आँधे । नूतन दरव करम ते बाँधे ॥
वीतरागपद जो भवि परसै । ताको मुक्तअवस्था सरसै ॥८५ ॥

दोहा ।

रागादिकको त्यागि जे, वीतराग हो जाहँ ।
चले जाहिं वैकुंठमें, कोइ न पकरै बाहँ ॥ ८६ ॥

(३४)

मनहरण ।

परिनाम अशुद्धतैं पुग्गलकरम बँधै, सोई परिनाम राग-दोषमोहमई है । तामें मोह दोष तो अशुभ ही है सदा काल, रागमें दुभेद वृंद वेद वरनई है ॥ पंच परमेश्वरकी भक्ति धरमानुराग, यह शुभराग भाव कथंचित लई है । विषय कषायादिक तामें रतिरूप सो, अशुभ राग सरवथा त्यागजोग तई है ॥ ८७ ॥

(३५)

परवस्तुमाहिं जो पुनीत परिनाम होत, ताको पुन्य नाम

वृंद जानो हुलसंत है । तैसे ही अशुभ परिनाम परवस्तु-विषै, ताको नाम पाप संक्लेशरूप तंत है ॥ जहां परवस्तु विषै दोऊ परिनाम नहिं, केवल सुसत्ताहीमें शुद्ध वरतंत है । सोई परिनाम सब दुःखके विनाशनको, कारन है ऐसे जिन-शासन भनंत है ॥ ८८ ॥

चौपाई ।

पर परनतितै रहित विचच्छन । सकलदुःखखयकारन लच्छन ॥
मोच्छवृच्छतरुवीज विलच्छन । शुद्धपयोग गहै शिवगच्छन ८९

(३६)

मत्तगयन्द ।

थावरजीव निकायनिके, पृथिवी प्रमुखादिक भेद घने है ।
औ त्रसरासि निवासिनके, तनके कितनेक न भेद बने है ॥
सो सब पुग्गलदर्वमई, चिनमूरतितै सब भिन्न ठने है ।
चेतन हू तिन देहनितै, निहचै करि भिन्न जिनिद भने है ९०

(३७)

जो जन या परकारकरी, निज औ परको नहिं जानत नीके ।
आपसरूप चिदानँद वृंद, तिसे न गहै मदमोह वमीके ॥
सो नित मै तनरूप तथा, तन है हमरो इमि मानत ठीके ।
भूरि भवावलिमाहि भमै, निहचै वह मोह महामद पीके ॥९१॥

(३८)

मनहरण ।

आतमा दरव निज चेतन सुपरिनाम, ताहीको करत सदा ताहीमें रमत है। आपने सुभावहीको करता है निहचै सो, निजाधीन भाव भूमिकाहीमें गमत है ॥ पुग्गलदरवमई जेते है प्रपंच संच, देहादिक तिनको अकरता समत है। ऐसो भेद भेदज्ञान नैनतै विलोको वृंद, याही विना जीव भव भॉवरी भमत है ॥ ९२ ॥

(३९)

द्रुमिला ।

यह जीव पदारथकी महिमा, जगमें निरखो भ्रमको हरिके।
मधि पुग्गलके परिवर्ततु है, सब कालविषै निहचै करिके ॥
तव हू तिन पुग्गल कर्मनिको, न गहै न तजै न करै धरिके।
वह आपुहि आप सुभावहितैं, प्रनवै सतसंगतिमें परिके॥९३॥

(४०)

मनहरण ।

सोई जीवदर्व अब संसार अवस्थामाहिं, अशुद्ध चेतना जो विभावकी ढरनि है। ताहीको वन्यौ है करतार ताके निमितसों, याके आठ कर्मरूप धूलिकी धरनि है ॥ सोई कर्म धूल मूल भूलको सुफल देहि, फेरि काहू कालमाहिं तिनकी करनि है। ऐसे वंधजोग भाव आपनो विभाव जानि, त्यागै भेदज्ञानी जासों संसृत तरनि है ॥ ९४ ॥

(४१)

जबै जीव रागदोष समल विभावजुत, शुभाशुभरूप परिनामको ठटत है । तबै ज्ञानावरनादि कर्मरूप परज याके, जोग द्वार आयकै प्रदेशपै पटत है ॥ जैसे रितु पावसमें धाराधर धारनितैं, धरनिमें नूतन अंकुरादि अटत है । तैसे ही शुभाशुभ अशुद्ध रागदोषनितैं, पुग्गलीक नयौ कर्म बंधन बटत है ॥ ९५ ॥

दोहा ।

तातैं पुदगल दरव ही, निज सुभावतै मीत ।
अति विचित्रगति कर्मको, कर्ता होत प्रतीत ॥ ९६ ॥

(४२)

मनहरण ।

सो असंख प्रदेश प्रमान जगजीवनिके, मोह राग दोष ये कषायभाव संग है । ताहीतै करमरूप रजकरि बँधै ऐसे, सिद्धांतमें कही वृंद बंधकी प्रसंग है ॥ जैसे पट लोध फटकड़ी आदितै कसैलो, चढत मजीठ रंग तापै सरवंग है । तैसे चिदानंदके असंख परदेशपर, चढ़त कषायतै करम रज रंग है ॥ ९७ ॥

(४३)

बंधको कथन यह थोरेमें गथन निहचै मथनकरि ज्ञान तुलामें तुलतु है । जीवनिके होत सो दिखाई जिनराज मुनि,—

मंडलीको जानै उरलोचन खुलतु है ॥ यासों विपरीत जो है पुद्गलीक कर्मबंध, सो है विवहार वृंद काहेको भुलतु है । निज निज भावहीके करता सरव दर्व, यही भूले जीव कर्म-झूलना झुलतु है ॥ ९८ ॥

पुण्यपापरूप परिनाम जो है आतमाके, रागादि सहित ताको आपु ही है करता । तिन परिनामनिकों आप ही गहन करै, आपु ही तजन करै ऐसी रीति धरता ॥ तातै इस कथनको कथंचित शुद्ध दरवारथीक नय ऐसे भनी भर्म-हरता । पुग्गलीक दर्व कर्मको है करतार सो, अशुद्ध विवहार-नयद्वारतैं उचरता ॥ ९९ ॥

प्रश्न । छप्पय ।

रागादिक परिनाम बंध, निहचै तुम गाये ।
फेरि शुद्ध दरवारथीक नय, विषय बताये ॥
पुनि सो गहने जोग, कहत हौ हे मुनिराई ।
वह रागादि अशुद्ध, दरवको करत सदाई ॥
यह तो कथनी नहिं संभवत, क्यों अशुद्धको गाहिये ।
याको उत्तर अब देयके, संशय मेटो चाहिये ॥ १०० ॥

उत्तर । दोहा ।

रागादिक परिनाम तौ, है अशुद्धतारूप ।
याहीकरि संसारमें, है अशुद्ध चिद्रूप ॥ १०१ ॥

यामें तौ सदेह नहिं, है परंतु सकेत ।
यहाँ विविच्छाभेदतै, कथन करी जिहि हेत ॥ १०२ ॥

छप्पय ।

शुद्ध दरवका कथन, एक दरवाश्रित जानो ।
और दरवका और मो(?), अशुद्धता सो(?) मानो ॥
यही अपेच्छा यहां, कथनका जोग बना है ।
औ पुनि निहचै बंध, नियत नय गहन भना है ॥
ताको सुहेत अब कहत हौं, सुनो गुनो मन लायकै ।
जातै सब संशय दूर ह्वै, सुथिर होहु शिव पायकै ॥१०३॥

चौबोला ।

जो यह जीव लखै अपनेको, निज विकारतै बंध धरै ।
तौ विकार तजि वीतराग ह्वै, छूटन हेत उपाय करै ॥
जो परकृत बंधन समुझै तब, वेदांतीवत नाहिं डरै ।
यही अपेच्छा यहां कथन है, समुझै सो भवसिंधु तरै॥१०४॥

(४४)

मनहरण ।

जाकी मति मैली ऐसी फैली जो शरीरपर, दर्वहीको कहै की हमारो यही रूप है । तथा यह मेरो ऐसो चेरो भयो मोहहीको, छोड़ै न ममत्व बुद्धि धरै दौरधूप है ॥ सो तो साम्यरसरूप शुद्ध मुनिपद ताको, त्यागिके कुमारगमें चलत कुरूप है । ताको ज्ञानानंदकंद शुद्ध निरद्वंद सुख, मिलै न कदापि वह परै भवकूप है ॥ १०५ ॥

दोहा ।

है अशुद्ध नयको विषय, ममता मोह विकार ।
ताहि धरे वरतै सु तौ, लहै न पद अविकार ॥ १०६ ॥

(४५)

मनहरण ।

मै जो शुद्ध बुद्ध चिनमूरत दरव सो तौ, परदर्वनिको न भयो हों काहू कालमें । देहादिक परदर्व मेरे ये कदापि नाहिं, ये तौ निजसत्ताहीमें रहै सब हालमें ॥ मै तौ एक ज्ञानपिंड अखंड परमजोत, निर्विकल्प चिदाकार चिदानंद चालमें । ऐसें ध्यानमाहिं जो सुध्यावत स्वरूप वृंद, सोई होत आतमाको ध्याता वर भालमें ॥ १०७ ॥

दोहा ।

शुद्ध दरवनयको गहै, निहचैरूप अराध ।
शुद्ध चिदातम सो लहै, मैटै कर्म उपाध ॥ १०८ ॥

(४६)

मनहरण ।

हूं जो हौ विशुद्ध भेदज्ञान नैनधारी सो, निजातमा दरव ताहि ऐसे करि जानौ हौ । सहज सुभाव निज सत्ताहीमें ध्रौव सदा, ज्ञानके सरूप दरसनमई मानौ हौं ॥ परभाव तजे तातै शुद्ध औ अतिंद्री सर्व, पदारथ जानैतै महारथ प्रमानौ हौ । आपने सरूपमें अचल परवस्तुकों न, अवलंब करै यातै अनालंब ठानौ हौ ॥ १०९ ॥

दोहा ।

ज्ञानरूप दरसनमई, अतिइंद्री ध्रुव धार ।
महा अरथ पुनि अचलवर, अनालंब अविकार ॥ ११० ॥
सात विशेषनि सहित इमि, लख्यौ आतमाराम ।
ताही शुद्ध सरूपमें, हम कीनों विसराम ॥ १११ ॥
पंच विशेषनिको कथन, करि आये बहु थान ।
अनालंब अरु महारथ, इनको सुनो बखान ॥ ११२ ॥

मनहरण ।

कर्ममल नासिके प्रकाश होत ज्ञान जोत, सो तौ एक-रूप ही अभेद चिदानंद है । तासमें सभेद वृंद ज्ञेय प्रति-बिंब सब, तासकी सपेच्छ भेद अनंत सुछंद है ॥ पांचों जड़-दर्वके सरूपको दिखावै सोई, याहीतै महारथ कहावत अमंद है । परवस्तुको सुभाव कभी न अलंब करै, तातै अनालंब याकों भाषै जिनचंद है ॥ ११३ ॥

(४७)

दोहा ।

तन धन सुख दुख मित्र अरि, अध्रुव भने जिनभूप ।
ध्रौव निजातम ताहि गहु, जो उपयोगसरूप ॥ ११४ ॥

(४८)

मत्तगयन्द ।

जो भवि होय महाव्रतधारक, या सु अनुव्रतकारक कोई ।
या परकारसों जो परमातम, जानिके ध्यावत है थिर होई ॥

सो सुविशुद्ध सुभाव अराधक, मोहकी गांठि खपावत सोई।
ग्रंथनिको सब मंथनिकै, निरग्रंथ कथ्यौ रससार इतोई॥११५॥

(४९)

मनहरण।

अनादिकी मोह दुरबुद्धिमई गांठि ताहि, जाने दूर कियौ निज भेदज्ञान बलतै। ऐसो होत संत वह इंद्रिनिके सुख दुख, सम जानि न्यारे रहै तिनके विकलतै॥ सोई महाभाग मुनिराजकी अवस्थामाहिं, रागदोष भावको विनाशै मूल थलतै। पावै सो अखंड अतिइंद्रिय अनत सुख, एक रस **वृंदावन** रहै सो अचलतै॥ ११६॥

(५०)

मोहरूप मैलको खिपावै भेदज्ञानी जीव, इंद्रिनिके विषैसों विरागता सु पुरी है। मनको निरोधिकै सुभावमें सुथिर होत, जहां शुद्ध चेतनाकी ज्ञानजोत फुरी है॥ सोई चिनमूरत चिदातमाको ध्याता जानो, पर वस्तुसे भी जाकी प्रीति रीति दुरी है। ऐसे कुंदकुंदजी वखानी ध्यान ध्याता वृंद, सोई सरधानै जाकी मिथ्यामति चुरी है॥ ११७॥

प्रश्न—दोहा।

जो मन चपल पतां[1]कपट, पवन दीपसम ख्यात।
सो मन कैसै होय थिर, उत्तर दीजे भ्रात॥ ११८॥

---

१ पताका—निशानका वस्त्र।

उत्तर-

पांचों इंद्रिनके जिते, विषय भोग जगमाहिं ।
तिनहीसों मन रातदिन, भमतो सदा रहाहि ॥ ११९ ॥
मोह घटे वैरागता, होत तजै सब भोग ।
निज सुभाव सुखमाहिं तब, लीन होय उपयोग ॥१२०॥
तहां सुमनको खैचके, एक निजातम भाव ।
तामधि आनि झुकाइये, भेदज्ञानपरभाव ॥ १२१ ॥
तहां सो मनकी यह दशा, होत औरसे और ।
जैसे काग-जहाजको, सूझै और न ठौर ॥ १२२ ॥
जो कहुँ इत उतको लखै, तौ न कहूं विसराम ।
तब हि होय एकाग्र मन, ध्यावै आतमराम ॥ १२३ ॥
ऐसे आतमध्यानतै, मिलै अतिंद्री शर्म ।
शुद्ध बुद्ध चिद्रूपमय, सहज अनाकुल धर्म ॥ १२४ ॥

(५१)

मनहरण ।

घातिकर्म घाति भलीभांत जो प्रतच्छ सर्व, वस्तुको सरूप निज ज्ञानमाहि धरै है । ज्ञेयनिके सत्तामें अनंत गुन-पर्ज शक्ति, ताहूको प्रमानकरि आगे विसतरै है ॥ असंदेह-रूप आप ज्ञाता सिरताज वृंद, संशय विमोह सब विभ्रमको हरै है । ऐसो जो श्रमण सरवज्ञ वीतराग सो, वतावो अब कौन हेत काको ध्यान करै है ॥ १२५ ॥

मोह उदै अथवा अज्ञानतासों जीवनिके, सकल पदारथ प्रतच्छ नाहि दरसै । यातै चित चाहकी निवाह हेत ध्यान करै, अथवा संदेहके निवारिवेको तरसै ॥ सो तो सरवज्ञ वीत-रागजूके मूल नहिं, घातिविधि[1] घातें ज्ञानानंद सुधा वरसै । इच्छा आवरन अभिलाष न संदेह तब, कौन हेत ताको ध्यावै ऐसो संशै परसै ॥ १२६ ॥

(५२)

ज्ञानावरनादि सर्व वाधासों विमुक्त होय, पायो है अवाध निज आतम धरम है । ज्ञान और सुख सरवंग सब आत-माके, जासों परिपूरित सो राजै अभरम है ॥ इंद्रीसों रहित उतकिष्ट अतिइंद्री सुख, ताहीको एकाग्ररूप ध्यावत परम है । ये ही उपचारकरि केवलीके ध्यान कह्यौ, भेदज्ञानी जानै यह भेदको मरम है ॥ १२७ ॥

दोहा ।

अतिइंद्री उतकिष्ट सुख, सहज अनाकुलरूप ।
ताहीको एकाग्र निज, अनुभवते जिनभूप ॥ १२८ ॥
अनइच्छक वाधा रहित, सदा एक रस धार ।
यही ध्यान तिनके कह्यौ, नय उपचार अधार ॥ १२९ ॥
पुव्व कर्मकी निरजरा, नूतन वंधै नाहिं ।
यही ध्यानको फल लखौ, वृंदावन मनमाहिं ॥ १३० ॥

---

१ घातिया कर्म ।

(५३)

मनहरण ।

या प्रकार पूरवकथित शिवमारगमें, सावधान होय जो विशुद्धता सँभारी है । चरमशरीरी जिन तथा तीरथंकर, जिनिंददेव सिद्ध होय वरी शिवनारी है ॥ तथा एक दोय भवमाहिं जे मुकत जाहिं, ऐसे जे श्रमन शुद्धभावअधिकारी है । तिन्है तथा ताही शिवमारगको **वृंदावन**, वार वार भली भाँति वंदना हमारी है ॥ १३१ ॥

दोहा ।

वहुत कथन कहँ लगु करों, जो शुद्धातम तत्त्व[1] ।
ताहीमें परवर्त[2] करि, भये जु तदगत[3]-रत्त ॥ १३२ ॥
ऐसे सिद्धनिकों तथा, आतमअनुभवरूप ।
शुद्ध मोख-मगको नमों, दरवितभाव सरूप ॥ १३३ ॥

(५४)

मनहरण ।

तातै जैसे तीरथेश आदि निजरूप जानि, शुद्ध सरधान ज्ञान आचरन कीना है । **कुंदकुंद** स्वामी कहै ताही परकार हम, ज्ञायक सुभावकरि आपै आप चीना है ॥ सर्व परवस्तुसों ममत्ववुद्धि त्यागकरि, निर्ममत्व भावमें सु विसराम लीना है । सोई समरसी वीतराग साम्यभाव **वृंद**, मुकतको मारग प्रमानत प्रवीना है ॥ १३४ ॥

---

१ तत्त्व । २ प्रवृत्ति । ३ तद्गतरक्त—लवलीन ।

मेरो यह ज्ञायक सुभाव जो विराजत है, तासों और ज्ञेयनिसों ऐसो हेत झलकै। कैधों वे पदारथ उकीरे ज्ञान थभमाहिं, कैधों ज्ञान पटविषै लिखे है अचलकै॥ कैधों ज्ञान कूपमें समानै है सकल ज्ञेय, कैधों काहू कीलि राखे त्याग तन पलकै। कैधों ज्ञानसिंधुमाहिं डूबे धों लपटि रहे, कैधों प्रतिविंवित है सीसेके[1] महलकै॥ १३५॥

ऐसो ज्ञान ज्ञेयको वन्यो है सनवंध तऊ, मेरो रूप न्यारो जैसें चंद्रमा फलकमें। अनादिसो और रूप भयो है कदापि नाहिं, ज्ञायक सुभाव लिये राजत खलकमें॥ ताको अव निहचै प्रमान करि वृंदावन, अंगीकार कियौ भेदज्ञानकी झलकमें। त्यागी परमाद परमोद धारि ध्यावत हों, जातै पर्म धर्म शर्म पाइये पलकमें॥ १३६॥

दोहा।

मेरो रूप अनादितै, थो याही परकार।
मोहि न सूझ्यो मोहवश, ज्यों मृग मृगमद[2] धार॥ १३७
अव जिनप्रवचनदीपकरि, आप रूप लखि लीन।
तजि आकुल भ्रम मोहमल, भये तासुमें लीन॥ १३८॥
अव वदो शिवपंथ जो, शुद्धपयोग सरूप।
इक अखंड वरतत त्रिविधि, अमल अचल चिद्रूप॥ १३९
भये जासु परसादतै, शुद्ध सिद्ध भगवान।
सुमंग[3]सहित वदों तिन्हें, भावसहित धरि ध्यान॥ १४०॥
और जीव तिहि मगविषै, जे वरतत उमगाय।
भावभगतजुत प्रीतिसों, तिन्हें नमों सिरनाय॥ १४१॥

---

१ कांचके। २ कस्तूरी। ३ जैन आगम।

कुन्दकुन्द श्रीगुरु भये, भवदधितरन जिहाज ।
प्रवचनसार प्रकाशके, सारे भविजन काज ॥ १४२ ॥
ते गुरु मो मन मल हरो, प्रगटो स्वपरविवेक ।
आपा पर पहिचानमें, रहै न भर्म रतेक[2] ॥ १४३ ॥

चौपाई ।

पूरन होत अबै[1] अविकार । हेयादेय छठो अधिकार ।
आगे चारितको अधिकार । होत अरंभ शुद्ध सुखकार ॥ १४४ ॥

छन्द कवित्त ।

मोह भरम तम भर्यो अभिंतर, होत न आपा पर निरधार ।
पुग्गल-जनित ठाठ बहुविधि लखि, ताकों आपा लखत गँवार ॥
आपरूप जो वस्तु विलच्छन, ज्ञायक लच्छन धरै उदार ।
भेदज्ञान विन सो नहिं सूझत, है वह "**तिन[3]के ओट पहार**" १४५

दोहा ।

जैवंतो जिनदेव जो, पायौ शुद्ध सरूप ।
कर्म कलंक विनाशिके, भये अमल चिद्रूप ॥ १४६ ॥
सो इत नित मंगल करो, सुखसागरके इंदु ।
वृंदावन वंदन करत, अर्हं वरन जुत विंदु ॥ १४७ ॥

इति श्रीमत्कुदकुदाचार्यकृत परमागम श्री प्रवचनसारजीकी वृंदावनकृत भाषाविषें द्रव्यानिका विशेपरूप कथनका अधिकारके पीछें विवहारिक जीवदशा ज्ञेयतत्वकथन ऐसा छठ्यो अधिकार सम्पूर्णम् ।

मिती पौषवदी ९ भौम सवत् १९०५ काशीजीमे वृंदावनने लिखी स्वपरोपकाराय । इहाताईं गाथा २०२ । और भाषाके छद सव ७२८ भये सो जयवत होहु—

---

१ पूर्ण किये । २ रती भर भी । ३ तृणके अर्थात् तिनकाके ।

ओं नमः सिद्धेभ्य

अथ सप्तमोश्चारित्राधिकारः ।

मगलाचरण ।

दोहा ।

श्रीअरहंत प्रनाम करि, सारद सुगुरु मनाय ।
विघनकोट जातैं कटै, नित नव मंगलदाय ॥ १ ॥
चारितको अधिकार अब, शिवसुखसाधनहेत ।
लिखों ग्रंथ—पथ पेखकै, जो अबाध सुख देत ॥ २ ॥

अथ मोक्षभिलापीका लक्षण । मनहरण ।

मोच्छअभिलापी भव्य जीवको प्रथम सर्व, दर्वनिको जथारथ ज्ञान भयो चहिये । तैसैही चारित्रको सरूप भले जान करि, ज्ञानके सुफलहेत ताकों तब गहिये ॥ आतमीक ज्ञानसेती जेती अविरोध क्रिया, इच्छा अहंकार तजि ताहीको निबहिये । ऐसे ज्ञान आचरन दोनोमाहिं वृंदावन, एकताई भयेहीसों अखै सुख लहिये ॥ ३ ॥

दोहा ।

ग्रंथारभ विपै सुगुरु, जिहिकरि वंदे इष्ट ।
तिनही गाथनिसों यहां, नमैं पचपरमिष्ट ॥ ४ ॥
फिर गुरु कहत दयाल वर, जिमि हम इष्ट मनाय ।
अमलज्ञान दरसनमई, पायौ साम्य सुभाय ॥ ५ ॥
तैसेही भवि वृंद तुम, दुखसो छूटनहेत ।
यह मुनिमारग आचरौ, जो सुभावनिधि देत ॥ ६ ॥

(१)

द्रुमिला ।

अपने सुकुटंब समूहनिसों, वह पूछिकै भेदविज्ञानधनी ।
गुरु मात पिता रमनी सुतसों, निरमोहित होय विराग भनी ॥
तव दर्शन ज्ञान चरित्र तथा, तप वीरज पंच अचार गनी ।
इनको दिढताजुत धारत है विधि,—सों सविवेक प्रमाद हनी॥७॥

अथ वन्धुवर्गसबोधन–विधि । चौपाई ।

मुनिमुद्रा जो धारन चहै । सो इमिसब कुटुंबसों कहै ।
जो यह तनमें चेतनराई । सो आतम तुम्हरो नहिं भाई ॥८॥
यह निहचैकरि तुम अवधारो । तातै मोसों ममता छाँरो ॥
मो उर ज्ञानजोत परकासे । आपुहि आप बंधु ढिग भासे॥९॥

मातुपिता सबोधन ।

इस जनके तनके पितुमाता । अहो सुनो तुम वचन विख्याता ॥
इस तनको तुमने उपजाया। आतमको तुम नहिं निपजाया॥१०॥
यह निहचैकरके अवधारो । तातैं मोसों ममता छॉरो ॥
ज्ञानजोतिजुत आतमरामा। यह प्रगट्यौ है चिदगुनग्रामा॥११॥
अपनो सहजसुभाव सु सत्ता । सोई मातपिता धुववत्ता ॥
तासों यह अव प्रापत हो है । यातै मोसों तजिये मोहै॥१२॥

स्त्रीसबोधनवचन ।

हे इस चेतन तनकी नारी । रमी तु तनसों बहुत प्रकारी ॥
आतमसों तू नाहिं रमी है । यह निहचैकरि जानि सही है॥१३॥

तातै इस आतमसों ममता । तजि करि तू अब धरि उर समता॥
मम घट ज्ञानजोत अब जागा॥विषयभोग विषसम मोहि लागा१४
निजअनुभूतरूप वरनारी । तासों रमन चहत अविकारी ॥
इहि विधि परविरागजुत वानी । कहै नारिसो भेदविज्ञानी१५

पुत्रसंबोधन वचन ।

हो इस जनके तनके जाये । पुत्र सुनो मम वचन सुहाये ॥
तू इस आतमसों नहिं जाया । यह निहचैकरि समुझ सु भाया१६
तातै तुम मम ममता त्यागो । समताभाव-सुधारस पागो ॥
यह आतम निजज्ञानजोतिकर।प्रगट भयो उर-मोह-तिमर-हर१७
याके सुगुन सुपूत सयाने । है अनादितै संग प्रधाने ॥
तिनसो प्रापति होंन चहै है । तुमसों यह समुझाय कहै है१८॥

दोहा ।

वंधुवरगसों आपुको, या विधि लेय छुडाय ।
कहि विरागके वचन वर, मुनिपद धारै जाय ॥ १९ ॥
जो आतमदरसी पुरुष, चाहै मुनिपद लीन ।
सो सहजहि सुकुटुंवसों, है विरकत परवीन ॥ २० ॥
ताहि जु आय परै कहू, कहिवेको सनवंध ।
तो पूरव परकारसों, कैह वचन निरवंध ॥ २१ ॥
कछु ऐसो नहिं नियम जो, सव कुटुंव समुझाय ।
तवही मुनिमुद्रा धरै, वसै सु वनमें जाय ॥ २२ ॥
सव कुटुंव काहू सुविधि, राजी नाहीं होय ।
गृह तजि मुनिपद धरनमें, यह निहचै करि जोय ॥२३॥

जो कहुं बनै बनाव तौ, पूरवकथित प्रकार ।
कहि विरागजुत वचन वर, आप होय अनगार ॥ २४ ॥
तहां बंधुके वर्गमें, निकटभव्य कोइ होय ।
सुनि विरागजुत वचन तित, मुनिव्रत धारै सोय ॥ २५ ॥

अथ पचाचारग्रहणविधि ।

अब जिस विधिसों गहत हैं, पंचाचार पुनीत ।
लिखों सुपरिपाटीसहित, जथा सनातनरीत ॥ २६ ॥

मनहरण ।

आतमविज्ञानी जीव आपने सरूपको, सुसिद्धके समान देखि जानि अनुभवता । उपाधीक भावनितै आपुको नियारो मानि, शुभाशुभक्रिया हेय जानिके न भवता ॥ पुव्वबद्ध उदैतै विकारपरिनाम होत, रहै उदासीन तहां आकुल न पवता । सो तो परदर्वनिको त्यागी है सुभावहीतै, गहै ज्ञान-गुन वृंद तामें लवलवता ॥ २७ ॥

दोहा ।

ऐसे ज्ञानी जीवको, अब क्या त्यागन जोग ।
अंगीकार करै कहा, जहँ सुभावरस भोग ॥ २८ ॥
पै चारित्रसुमोहवश, होहिं शुभाशुभभाव ।
ताखु अपेच्छातै तिन्है, त्याग गहन दरसाव ॥ २९ ॥
प्रथमहिं गुनथानकनिकी, परिपाटी परमान ।
अशुभरूप परनति तजै, निहचै सो वुधिवान ॥ ३० ॥

पीछे शुभ परनतिविषै, रतनत्रय विवहार ।
पंचाचार गहन करै, सो जतिमति अनुसार ॥ ३१ ॥

चौपाई ।

अहो आठविधि ज्ञानाचार । कालाध्ययन विनय हितकार ॥
उपाधान वहुमान विधान । और अनिह्नव भेद प्रमान ॥ ३२ ॥
अरथ तथा विंजन उर आन । तदुभयसहित आठ इमि जान ।
मै निहचै तोहि जानों सही । शुद्धातमखुभाव तू नही ॥ ३३ ॥
पै तथापि तबलों तोहि गहों । जबलो शुद्धातम निज लहों ॥
तुवप्रसाद सीझै मम काज। यों कहि विनय गहै गुन साज३४

अथ दर्शनाचारधारणविधि ।

अहो आठ दरशनआचारा । निःशंकित निःकांछित धारा ॥
निरविचिकित्सा निरमूढ़ता । उपगूहन थिंति[1] वाच्छलता[2] ॥
मै निहचै तोहि जानों सही । शुद्धातम सुभाव तू नही ॥
पै तथापि तबलो तोहि गहों । जबलों शुद्धातग निज लहों२६॥
तुवप्रसाद सीझै मम काज । यों करि विनय गहै गुन साज ।
समदिष्टी भविजीव प्रवीन । हिये विवेकदशा अमलीन ॥२७॥

अथ चारित्राचारधारणविधि ।

अहो मुकतिमगसाधनहार । तेरहविधि चारित्राचार ॥
पाच महाव्रत गुपति सु तीन । पाचों समिति भेद अमलीन३८
मै निहचै तोहि जानों सही । शुद्धातम सुभाव तू नही ।
पै तथापि तबलो तोहि गहों । जब लों शुद्धातम निज लहों३९॥

---

१ स्थितिकरण । २ वात्सल्य ।

तुव प्रसाद सीझै ममकाज । यों करि विनय गहै गुन साज ।
सुपरदया दोनों उर धरै । होय दिगंबर शिवतिय बरै ॥४०॥

अथ तपाचाराधारणविधि ।

अहो दुवादश तप आचारा । अनशन अवमोदर्य उदारा ।
व्रतपरिसंख्या रसपरित्यागी । विविक्तसज्यासन[1] बड़भागी
कायकलेश छ बाहिज[2] येहा । प्राच्छित[3] विनय सकल गुनगेहा ॥
वैयाव्रतरत नित स्वाधाये । ध्यानसहित व्युतसर्ग[4] बताये ४२
मै निहचै तोहि जानों सही । शुद्धातमसुभाव तू नही ।
पै तथापि तबलों तोहि गहों । जबलों शुद्धातम निज लहों॥४३॥
तुव प्रसाद सीझै ममकाज । यों करि विनय गहै गुन साज ।
उभयभेद तप खेद न धरै । महा हरष मनमें विसतरै ॥४४॥

अथ वीर्याचारावधारणविधि ।

अहो सुशकति बढावनिहार । वीर्याचार अचारअधार ।
मै निहचै तोहि जानों सही । शुद्धातमसुभाव तू नही ॥४५॥
पै तथापि तबलों तोहि गहों । जबलों शुद्धातम निज लहों ॥
तुव प्रसाद सीझै मम काज । यों करि विनय गहै गुन साज॥४६॥

दोहा ।

पंचाचार पुनीतको, इहिविधि धारै धीर ।
और कथन आगे सुनो, जो मेटै भवपीर ॥ ४७ ॥

(२)

मनहरण ।

पंचाचारविधिमें प्रवीन जे अचारज जो, मूलोत्तर गुनकरि

1 विविक्तशय्यासन । 2 बाह्य । 3 प्रायश्चित्त । 4 कायोत्सर्ग ।

पूरित अभग है। कुल रूप वयकी विशेषताई लिये वृंद, मुनिनिको प्रियतर लागै सरवग है॥ तापै यह जाय सिर नाय कर जोरि कहै, स्वामी मोहि अंगीकार कीजिये उमग है। ऐसे जब कहै तब स्वामी अंगीकार करें, तबै वह नयो मुनि रहै संग संग है ॥ ४८ ॥

अथ आचार्यलक्षण। चौपाई।

पंचाचार आप आचरहीं। औरनिको तामें थिर करहीं।
दोनोविधिमें परम प्रवीने। निज अनुभव समतारस भीने॥४९॥
जे उत्तमकुलके अवतारी। जिनहिं निशंक नमहिं नरनारी।
रहितकलंक क्रूरता त्यागी। सरलसुभाव सुजसि वडभागी ५०
हीनकुली नहिं वंदनजोगू। ताके होहि न शुद्धपयोगू।
कुलक्रमके क्रूरादि कुभावे। हीनकुलीमें अवशि रहावे॥५१॥
यातें कुलविशेषताधारी। उचितकुली पावे पद भारी।
अरु जिनकी वाहिज छवि देखी। यह प्रतीति उर होत विशेखी ५२
है इनके घट शुद्धप्रकाशा। साम्यभाव अनुभव अभ्यासा।
अंतरंगगत वाहिज दरसै। रूपविशेष यही सुख सरसै॥५३॥
बालक तथा बुढापामाहीं। बुद्धि चपल अरु विकल रहाहीं॥
तिनसों रहित सूरि परधाना। धीर बुद्धि गुन कृपानिधाना५४
जोबनदशा कामपद व्यापै। तासों वर्जित अचलित आपै।
यह विशेषता वयरूपकेरी। ताहि धरैं आचारज हेरी॥५५॥

धरै सुष्टुवय वर्जितदूषन । शीलसिंधु गुनरतनविभूषन ।
क्रियाकांड सिद्धांतनिके मत । कहि समुझावहिं मुनिजनको सत॥
जो मुनिको दूषन कहुँ लागै । मूलोत्तरगुनमें पद पागै ॥
प्राच्छित देय शुद्ध करि लेही । तातैं अतिप्रिय लागत तेही५७॥
ऐसे आचारजपै जाई । कहै नवीन मुनी शिर नाई ॥
मोकों शुद्धातमको लाहू । हेप्रभु प्रापति करि अवगाहू ॥५८॥
तब आचारज कहहिं उदारा । तोको शुद्धातम अविकारा ।
ताकी लाभ करावनिहारी । यही भगवती दिच्छा प्यारी॥५९॥
ऐसी सुनि सो मन हरषाई । मानहु रंक महानिधि पाई ।
बारबार गुरुको सिरनाई । तब मुनिसंग रहै सो जाई ॥ ६० ॥

(३)

मनहरण ।

मेरे चिनमूरततैं भिन्न परदर्व जिते, तिनको तो मै न कहूं-भयौ तिहूँकालमें । तेऊ परदर्व मेरे नाहिं जातैं कोई दर्व, काहूको सुभाव न गहत काहू हालमें ॥ तातैं इसलोक विषै मेरी कछु नाहिं दिखै, मेरो रूप मेरे ही चिदातमाकी चालमें । ऐसे करि निश्चै निज इंद्रिनिको जीति जथा,—जातरूपधारी होत ताको नावौं भाल मै ॥ ६१ ॥

दोहा ।

जथाजातको अर्थ अव, सुनो भविक धरि ध्यान ।
ग्रंथपंथ निर्ग्रंथ जिमि, मंथन करी प्रमान ॥ ६२ ॥

स्वयसिद्ध जैसो कछुक, है आतमको रूप ।
तैसो निजघटमें धरै, अमल अचल चिद्रूप ॥ ६३ ॥
दूजो अर्थ प्रतच्छ जो, जैसो मुनिपद होय ।
तैसी ही मुद्रा धरै, दरवलिंग है सोय ॥ ६४ ॥
ऐसे दोनो लिंगको, धारत धीर उदार ।
जथाजात ताको कहैं, वरै सोइ शिवनार ॥ ६५ ॥

(४)

अथ द्रव्यलिंगलक्षण । मनहरण ।

जथाजात दर्वलिंग ऐसो होत जहां परमानू परमान परिगहन रहतु है । शीस और डाढ़ीके उपारि डारै केश आप, शुद्ध निरगथपंथ मंथके गहतु है ॥ हिंसादिक पच जाके रच नाहिं सचरत, ऐसे तीनों जोग संच संच निबहतु है । देह खेह-खानके सँवारनादि क्रियासेती, रहित विराजै जैसी आगम उकतु है ॥ ६६ ॥

अथ भावलिंग ।

परदर्वमाहिं मोह ममतादि भावनिको, जहां न अरंभ कहूं निरारंभ तैसो है । शुद्ध उपयोग वृंद चेतनानुभावजुत, तीनों जोग तैसो तहां चाहियत जैसो है ॥ परदर्वके अधीन वर्तत कदापि नाहिं, आतमीकज्ञानको विधानवान ऐसो है । मोखसुखकारन भवोदधि उधारनको, अंतरंगभावरूप जैनलिंग ऐसो है ॥ ६७ ॥

घरै सुष्टुवय वर्जितदूषन । शीलसिंधु गुनरतनविभूषन ।
क्रियाकांड सिद्धांतनिके मत । कहि समुझावहिं मुनिजनको सत॥
जो मुनिको दूषन कहुँ लागै । मूलोत्तरगुनमें पद पागै ॥
प्राच्छित देय शुद्ध करि लेही । तातै अतिप्रिय लागत तेही५७॥
ऐसे आचारजपै जाई । कहै नवीन मुनी शिर नाई ॥
मोकों शुद्धातमको लाहू । हेप्रभु प्रापति करि अवगाहू ॥५८॥
तब आचारज कहहिं उदारा । तोको शुद्धातम अविकारा ।
ताकी लाभ करावनिहारी । यही भगवती दिच्छा प्यारी॥५९॥
ऐसी सुनि सो मन हरषाई । मानहु रंक महानिधि पाई ।
बारबार गुरुको सिरनाई । तब मुनिसंग रहै सो जाई ॥ ६० ॥

(३)

मनहरण ।

मेरे चिनमूरततै भिन्न परदर्व जिते, तिनको तो मै न कहूं-भयौ तिहूँकालमें । तेऊ परदर्व मेरे नाहिं जातैं कोई दर्व, काहूको सुभाव न गहत काहू हालमें ॥ तातै इसलोक विषै मेरी कछु नाहिं दिखै, मेरो रूप मेरे ही चिदातमाकी चालमें । ऐसे करि निश्चै निज इंद्रिनिको जीति जथा,—जातरूपधारी होत ताको नावों भाल मै ॥ ६१ ॥

दोहा ।

जथाजातको अर्थ अब, सुनो भविक धरि ध्यान ।
ग्रंथपंथ निर्ग्रंथ जिमि, मंथन करी प्रमान ॥ ६२ ॥

स्वयसिद्ध जैसो कछुक, है आतमको रूप ।
तैसो निजघटमें धरै, अमल अचल चिद्रूप ॥ ६३ ॥
दूजो अर्थ प्रतच्छ जो, जैसो मुनिपद होय ।
तैसी ही मुद्रा धरै, दरवलिंग है सोय ॥ ६४ ॥
ऐसे दोनो लिंगको, धारत धीर उदार ।
जथाजात ताको कहै, बरै सोइ शिवनार ॥ ६५ ॥

(४)

अथ द्रव्यलिंगलक्षण । मनहरण ।

जथाजात दर्वलिंग ऐसो होत जहां परमानू परमान परिगहन रहतु है । शीस और डाढ़ीके उपारि डारै केश आप, शुद्ध निरगथपंथ मंथके गहतु है ॥ हिंसादिक पच जाके रंच नाहिं संचरत, ऐसे तीनों जोग संच संच निबहतु है । देह खेह-खानके सँवारनादि क्रियासेती, रहित विराजै जैसी आगम उकतु है ॥ ६६ ॥

अथ भावलिंग ।

परदर्वमाहिं मोह ममतादि भावनिको, जहां न अरंभ कहूं निरारंभ तैसो है । शुद्ध उपयोग वृंद चेतनासुभावजुत, तीनों जोग तैसो तहां चाहियत जैसो है ॥ परदर्वके अधीन वर्त्तत कदापि नाहिं, आतमीकज्ञानको विधानवान वैसो है । मोखसुखकारन भवोदधि उधारनको, अंतरंगभावरूप जैनलिंग ऐसो है ॥ ६७ ॥

दोहा ।

दरवितभावितरूप इमि, जथाजातपद धार ।
अब आगे जो करत है, सुनो तासु विसतार ॥ ६८ ॥

(५)

मनहरण ।

परमगुरू सो दर्वभाव मुनिमुद्रा धारि, जथाजातरूप मन-
माहिं हरसत है । गुरूको प्रनाम थुति करै तब बारबार, जाके
उर आनँदको नीर वरसत है ॥ मुनिव्रतसहित जे क्रियाको
विभेद वृंद, तासुको श्रवनकरि हिये सरसत है । ताहीको
गहनकरि ताहीमें सुथिर होत, तबै वह मुनिपद पूरो पर-
सत है ॥ ६९ ॥

दोहा ।

परम-सुगुरु अरहंत जिन, तथा अचारज जान ।
जिनपै इन दिच्छा गही, तिनहिं नमै थुति ठान ॥ ७० ॥
मुनि व्रत क्रिया गहन करै, ताहीमें थिर होय ।
तब मुनिपद पूरन लहै, दरवित भावित दोय ॥ ७१ ॥
रागादिक विनु आपको, लखै सिद्धसमतूल ।
परमसमायिककी दशा, तब सो लहै अतूल ॥ ७२ ॥
प्रतिक्रमन आलोचना, प्रत्याख्यान जितेक ।
जति मति श्रुति अनुसार सो, धारै सहितविवेक ॥ ७३ ॥
तीनोंकालविषै सो मुनि, तीनों जोग निरोध ।
निज शुद्धातम अनुभवै, वरजित क्रियाविरोध ॥ ७४ ॥

तब मुनिपदपूरन तिन्हें, दरवित भावित जान।
वृंदावन वंदन करत, सदा जोरि जुग पान ॥ ७५ ॥

(६)

मनहरण।

महाव्रत पंच पंच समिति सु संच पंच, इंद्रिनिको वंच केश लुंचत विराजै है। षडावश्य क्रिया दिगअंबर गहिया जल,—ह्नौन त्यागि दिया भूमिसैन रैन साजै है॥ दाँतवन करै नाहिं खड़े ही अहार करै, सोऊ एकै वार प्रान धारनके काजै है। येई अठाईस मूलगुन मुनि पदवीके, निश्चैकरि कही जिनराज महाराजै है॥ ७६॥

तेई मूलगुनविषै मुनि जो प्रमादी होय, तबै ताकै संजमको छेद भंग होत है। तहां सो अचारज पै जायके प्रनाम करि, मुनिमंडलीके मध्य कहै दोष खोत है॥ जातै येई गुन सर्व निर्विकल्प सामायिक, भावरूप मुनिपदवीके मूल जोत है। तातै जैसे प्राछित बतावै गुरु तैसै करै, फेरि तामें थित होत करत उदोत है॥ ७७॥

सोना अभिलाषीको जितेक आभरन ताके, सर्वही गहन जोग जातै सर्व सोना है। परजाय विना कहूं दरव रहत नाहिं, तातै दर्वगाहीको समस्त ही सलोना है॥ तैसे मुनिपद-वीके मूल अठाईस गुन, मुनिपद धारै ताको सर्वभेद होना है। एको गुन घटै तबै मुनिपद भंग होय, ऐसो जानि सर्व-माहिं सावधान होना है॥ ७८॥

(७)

छप्पय ।

तिनको मुनिपद गहनविषैं, जे प्रथमाचारज ।
सो गुरुको है नाम, प्रवृज्यादायक आरज ॥
अरु जब संजम छेद, भंग होवै तामाहीं ।
जो फिर थापन करै, सो निरयापक कहवाहीं ॥
यों दोय भेद गुरुके तहां, दिच्छादायक एक ही ।
छेदोपस्थापनके सुगुरु, बाकी होंहिं अनेक ही ॥ ७९ ॥

दोहा ।

दिच्छा गहने बाद जो, संजम होवै भंग ।
एकदेश वा सर्व ही, ऐसो होय प्रसंग ॥ ८० ॥
तामें फिर जो थिर करहिं, जतिपथरीतिप्रमान ।
ते निर्यापक नाम गुरु, जानो श्रमन सयान ॥ ८१ ॥

(८)

छप्पय ।

जो मुनि जतनसमेत, कायकी क्रिया अरंभत ।
शयनासन उठि चलन, तथा जोगासन थंभत ॥
तहँ जो संजम घात होय, तब सो मुनिराई ।
आपु अलोचनसहित, क्रियाकरि शुद्धि लहाई ॥
यह बाहिज संजम भंगको, आपुहि आप सुदंडविधि ।
करि शुद्ध होहिं आचारमें, जे मुनिवृंद विशुद्धनिधि ॥८२॥

जिस मुनिका उपयोग, सुघटमें भंग भया है।
रागादिक मल भाव, रतनमें लागि गया है॥
तिनके हेत उपाय, जो जिनमारगकेमाही।
जती क्रियामें अतिप्रवीन, मुनिराज कहाही॥
तिनके ढिग जाय सो आपनो, दोष प्रकाशै विनय कर।
जो कहै दंड सो करै तिमि, तब ह्वै शुद्धाचारधर॥ ८३॥

(१२)

मनहरण।

जाके उर आतमीक ज्ञानजोति जगी वृंद, आपहीमें आपको निहारै तिहूँपनमें। संजमके घातकी न बात जाके बाकी रहै, समतासुभाव जाको आवै न कथनमें॥ सदाकाल सर्व परदर्वनिको त्यागै रहै, मुनिपदमाहि जो अखंड धीर मनमें। ऐसो जब होय तब चाहै गुरु पास रहै, चाहै सो विहार करै जथाजोग वनमें॥ ८४॥

(१३)

सम्यकदरशनादि अनंतगुननिजुत, ज्ञानके सरूप जो विराजै निजआतमा। ताहीमें सदैव परिवर्तत रहत और, मूलगुनमें है सावधान बातबातमा॥ सोई मुनि मुनिपदवीमें परिपूरन है, अंतरंग वहिरंग दोनों भेद भांतमा। नहीं अविकारी परदर्व परिहारी वृंद, वरै शिवनारी जो विशुद्ध सिद्ध जातमा॥ ८५॥

(१४)

भोजन उपास औ निवास जे गुफादि कहे, अथवा विहारकर्म जहां आचरत है । तथा देहमात्र परिग्रह जो विराजै और, गुरु शिष्य आदि मुनिसंग विचरत है ॥ और पुग्गलीक वृंद वैनकी उमंगमाहिं, चरचा अनेक धर्मधारा वितरत है । येते परदर्वनिको बन्यौ सनबंध तऊ, महामुनि ममता न तासमें धरत है ॥ ८६ ॥

दोहा ।

जो इनमें ममता धरैं, तजि समतारस रंग ।
तबही शुद्धपयोगमें, मुनिपदवी ह्वै भंग ॥ ८७ ॥
तातैं विगतविकार मुनि, वीतरागता धार ।
संगसहित वरतै तऊ, निजरसलीन उदार ॥ ८८ ॥

(१५)

मनहरण ।

जतनको त्यागिकै जु मुनि परमादी होय, आचरन करै विवहार काय करनी । सैनासन बैठन चलन आदि ताकेविषै, चंचलता धारै जो अशुद्धताकी धरनी ॥ तामें सर्वकाल ताको निरंतर हिंसा होत, ऐसे सरवज्ञ वीतरागदेव वरनी । जातै निज शुद्धभावघातकी बड़ी है हिंसा, तातै सावधानहीसों शुद्धाचार चरनी ॥ ८९ ॥

दोहा ।

जब उपयोग अशुद्धकी, होत प्रबलता चित्त ।
तब ही विना जतन मुनी, क्रिया करै सुनि मित्त॥९०॥
तहां शुद्धउपयोगको, होत निरंतर घात ।
हिंसा बड़ी यही कही, यातै मुनिपद घात ॥ ९१ ॥
तातै जतन समेत निज, शुद्धपयोग सुधार ।
सावधान वरतौ सुमुनि, तो पावो भवपार ॥ ९२ ॥

(१६)

छप्पय ।

जतन त्यागि आचरन करत, जो मुनिपदधारी ।
तहां जीव कोइ मरहु, तथा जीवहु सुखकारी ॥
ताकहँ निहचै लगत, निरंतर हिंसादूषन ।
वह घातत निजज्ञानप्रान, जो चिद्गुनभूषन ॥
अरु जो मुनिसमितिविषै सुपरि,—वरतत है तिनके कही ।
तनक्रियामाहिं हिंसा लगै, तऊ बंध नाहीं लही ॥ ९३ ॥

दोहा ।

हिंसा दोय प्रकार है, अंतर बाहिजरूप ।
ताको भेद लिखौं यहां, ज्यों भाषी जिनभूप ॥ ९४ ॥
अंतरभाव अशुद्धकरि, जो मुनि वरतत होय ।
घातत शुद्धसुभाव निज, प्रवल सुहिंसक सोय ॥९५॥
अरु बाहिज विनु जतन जो, करै आचरन आप ।
तहँ परजियको घात हो, वा मति होहु कदाप ॥९६॥

अंतर निजहिंसा करै, अजतनचारी धार ।
ताको मुनिपद भंग है, यह निहचै निरधार ॥ ९७ ॥
जे मुनि शुद्धपयोगजुत, ज्ञानप्रान निजरूप ।
ताकी इच्छा करत नित, निरखत रहत सुरूप॥९८॥
तिनकी कायक्रिया सकल, समितिसहित नित जान ।
तहँ पर कहूँ मरै तऊ, करम न बँधै निदान ॥९९॥

(१७)

मनहरण ।

जतनसमेत जाको आचरन नाहीं ऐसे, मुनिको तो उपयोग निहचै समल है । सो तो षटकायजीवबाधाकरि बँधै कर्म, ऐसे जिनचंद वृंद भाषत विमल है ॥ और जो मुनीश सदाकाल मुनिक्रियाविषैं, सावधान आचरन करत विमल है । तहॉ घात होत हू न बँधै कर्मबंध ताकै, रहै सो अलेप जथा पानीमें कमल है ॥ १०० ॥

(१८)

कायक्रियामाहिं जीवघात होत कर्मबंध, होहु वा न होहु यहां अनेकांत पच्छ है । पै परिग्रहसों ध्रुवरूप कर्मबंध बँधै, यह तो अवाधपच्छ निहचै विलच्छ है ॥ जातैं अनुराग विना याको न गहन होत, याहीसेती भंग होत संजमको कच्छ है । ताहीतै प्रथम महामुनि सब त्यागै संग, पावै तब उभैविधि संजम जो स्वच्छ है ॥ १०१ ॥

अंतरके भाव विना कायहीकी क्रियाकरि, संगको गहन नाहिं काहू भाँति होत है। अरहंत आदिने प्रथम याको त्याग कीन्हों, सोई मग मुनिनिकों चलिबो उदोत है॥ शुद्धभाव घातो भावै रातो परिग्रहमाहिं, दोऊ शुद्धसंजमको घाति मूल खोत है। ऐसो निरधार तुम थोरेहीमें जानो वृंद, याके धारे जागै नाहिं शुद्ध ज्ञानजोत है॥ १०२॥

(१९)

रूपसवैया।

अंतर चाहदाह परिहरकरि, जो न तजै परिगहपरसंग।
सो मुनिको मन होय न निरमल, संजम शुद्ध करत वह भंग॥
मन विशुद्ध विनु करम कटै किमि, जे प्रसंगवश बँधे कुढंग।
तातै तिलतुष मित हु परिग्रह, तजहिं सरव मुनिवर सरवंग१०३

(२०)

मनहरण।

कैसे सो परिग्रहके होत संत अंतरमें, ममता न होय यह कहां संभवत है। कैसे ताके हेतसों उपाय न अरंभै औ, असंजमी अवस्थाको सो कैसे न पवत है॥ तथा परदर्वविषै रागी भयौ कैसे तव, शुद्धातम साधै सुधा रस भोगवत है। यातै वीतरागी होय त्यागि परिग्रह निरारंभ होय शुद्धरूप साधो सिखवत है॥ १०४॥

दोहा ।

परिगहनिमित ममत्तता, जो न हियेमहँ होय ।
तब ताको कैसे गहै, देखो मनमें टोय ॥ १०५ ॥
परिगह होते होत ध्रुव, ममता और अरंभ ।
सो घातत सुविशुद्धमय, जो मुनिपद परवंभ ॥ १०६ ॥
तातै तिलतुष परिमित हु, तजौ परिग्रह मूल ।
इहि जुत जानों सुमुनिपद, ज्यों अकाशमें फूल ॥१०७॥
तातै शुद्धातमविषै, जो चाहो विश्राम ।
तो सब परिगहत्यागि मुनि, होहु लहौ शिवधाम ॥१०८॥

(२१)

चौपाई ।

गहन-तजन-मग सेवनहारे । जे मुनि सुपरविवेक सुधारे ।
सो जिस परिगह धारन कीने । होय न भंग जु मुनिपद लीने १०९
देशकालको लखिके रूपं । वरतहु जिमि भाषी जिनभूपं ।
अट्ठाईस मूलगुनमाहीं । दोष कदापि लगै जिमि नाही ॥११०॥

दोहा ।

इत शंका कोई करत, मुनिपद तो निरगंथ ।
तिनहिं परिग्रहगहन तुम, क्यों भाषत हौ पंथ॥१११॥
मुनिमग दोय प्रकार कहि, प्रथमभेद उतसर्ग ।
दुतिय भेद अपवाद है, दोउ साधत अपवर्ग ॥११२॥

चौपाई ।

मुनि उतसर्ग-मार्गकेमाही । सकल परिग्रह त्याग कराही ॥
जातैं तहां एक निजआतम । सोई गहनजोग चिद्गातम॥११३॥
तासों भिन्न और पुदगलगन । तिनको तहां त्याग विधिसों भन ।
शुद्धपयोगदशा सो जानौ । परमवीतरागता प्रमानौ ॥ ११४ ॥
अब अपवाद सुमग सुनि भाई । जाविधिसों जिनराज बताई ॥
जब परिग्रहतजि मुनिपद धरई । जथाजातमुद्रा आदरई ॥ ११५॥
तब वह वीतरागपद शुद्धी । ततखिन दशा न लहत विशुद्धी ॥
तब सो देशकालकहँ देखी । अपनी शकति सकल अवरेखी ११६॥
निज शुद्धोपयोगकी धारा । जो संजम है शिवदातारा ।
तासु सिद्धिके हेत पुनीती । जो शुभरागसहित मुनिरीती ॥
गहै ताहि तब ताके हेतो । बाहिजसंजम साधन लेतो ।
जे मुनिपदवीके है साधक । मुनिमुद्राके रंच न बाधक॥११८॥
शुद्धपयोगसुधारन कारन । आगम-उकत करै सो धारन ।
दया ज्ञान संजम हित होई । अपवादी मुनि कहिये सोई॥११९॥

(२२)

मनहरण ।

जौन परिग्रह कर्मबंधको करत नाहिं, असंजमवंत जाको जॉचै न कदाही है । ममता अरंभ आदि हिंसासों रहित होय, सोऊ थोरो मुनिहीके जोग ठहराहीं है ॥ दया ज्ञान संजमको साधक सदीव दीखै, संजम सरागहीमें जाकी परछाहीं

है। अपवादमारगी मुनिको उपदेश यही, ऐसो परिग्रह तुम राखो दोष नाही है॥ १२०॥

दोहा।

यामें हेत यही कहत, पीछी पोथी जानु।
तथा कमंडलुको गहन, यह सरधा उर आनु॥१२१॥
शुभपरनति संजमविषै, इनको है संसर्ग।
ताहीतै इनको गहत, अपवादी मुनिवर्ग॥ १२२॥

(२३)

अहो भव्यवृंद जहां मोक्षअभिलाषी मुनि, देहहूको जानत परिग्रह प्रमाना है। ताहूसों ममत्तभाव त्यागि आचरन करै, ऐसे सरवज्ञवीतरागने बखाना है॥ तहां अब कहो और कौन सो परिग्रहको, गहन करेंगे जहां त्यागहीको बाना है। ऐसो शुद्ध आतमीक पर्मधर्मरूप उत-सर्गमुनि मारगको फहरै निशाना है॥ १२३॥

(२४)

कायाको अकार जथाजात मुनिमुद्रा धरै, एक तो परिग्रह यही कही जिनंद है। फेर गुरुदेव जो सुतत्त्वउपदेश करै सोऊ पुग्गलीक वैन गहत अमंद है॥ वड़ेनिके विनैमें लगावै पुग्गलीक मन, तथा श्रुति पढ़ै जो सुपुग्गलको छंद है। येते उपकर्न जैनपंथमें हैं मुनिनिके, तेऊ सर्व परिग्रह जानो भविवृंद है॥ १२४॥

दोहा ।

एक शुद्धनिजरूपतै, जेते भिन्न प्रपंच ।
ते सब परिग्रह जानिये, शुद्धधर्म नहिं रच ॥ १२५ ॥
तातै इनको त्यागिके, गहो शुद्धउपयोग ।
सो उतसर्ग-सुमग कहो, जहँ सुभावसुखभोग॥१२६॥

(२५)

मनहरण ।

जैसे घटपटादि विलोकिवेको भौनमाहिं, दीपविषै तेल घालि बाती सुधरत है । तैसें ज्ञानजोतिसों सुरूपके निहारि-वेको, आहार विहार जोग कायाकी करत है ॥ यहां सुखभो-गकी न चाह परलोकहूके, सुखअभिलाषसों अबंध ही रहत है। रागादिकषायनिकों त्यागे रहै आठों जाम, ऐसो मुनि होय सो भवोदधि तरत है ॥ १२७ ॥

(२६)

जाको चिनमूरत सुभावहीसों काहू काल, काहू परदर्वको न गहै सरधानसों । यही ताके अंतरमें अनसन शुद्ध तप, निहचै विराजै वृंद परमप्रमानसों ॥ जोग निरदोष अन्न भोजन करत तऊ, अनाहारी जानो ताको आतमीक ज्ञानसों । तैसे ही समितिजुत करत विहार ताहि, अविहारी मानो महा-मुनि परधान सो ॥ १२८ ॥

(२७)

मुनिमहाराजजूके केवल शरीरमात्र, एक परिग्रह यह ताको

न निषेध है। ताहूसों ममत्त छाँरि वीतरागभाव धारि, अजोग अहारादिको त्यागै ज्यों अमेध है ॥ नाना तपमाहिं ताहि नितही लगाये रहैं, आतमशकतिको प्रकाशत अवेध है। सोई शिवसुंदरी स्वयंवरीविधानमाहिं, मुनि वर होय वृंद 'राधावेध' वेध है ॥ १२९ ॥

(२८)

एक वार ही अहार निश्चै मुनिराज करै, सोऊ पेट भरै नाहिं ऊनोदरको गहै । जैसो कछू पावै तैसो अंगीकार करै वृंद, भिच्छाआचरनकरि ताहूको नियोग है ॥ दिनहीमें खात रस आस न धरात मधु, मांस आदि सरवथा त्यागत अजोग है । देहनेह त्यागि शुद्ध संजमके साधनको, ऐसोई अहार शुद्ध साधुनिके जोग है ॥ १३० ॥

चौपाई ।

एकै वार अहार बखाने । तासुहेत यह सुनो सयाने ।
मुनिपदकी सहकारी काया । तासु खुधित यातै दरसाया ॥१३१॥
अरु जो वारवार मुनि खाई । तवहि प्रमाददशा वढि जाई ।
दरवभावहिंसा तव लागै । संजमशुद्ध ताहि तजि भागै ॥१३२॥
सोऊ रागभाव तजि लेई । तव सो जोग अहार कहेई ॥
तातै वीतरागताधारी । ऐसे साधु गहै अविकारी ॥ १३३ ॥
जो भरि उदर करै मुनिभोजन । तो है शिथिल न सधै प्रयोजन ॥
जोगमाहि आलस उपजावै । हिंसा कारन सोउ कहावै ॥१३४॥

तातै ऊनोदर आहारो। रागरहित मुनिरीति विचारो ॥
सोई जोग अहार कहा है। संजमसाधन साध गहा है ॥१३५॥
जथालाभको हेत विचारो। आपु कराय जु करै अहारो ॥
तब मनवांछित भोजन करई। इंद्रियराग अधिक उर धरई १३६
हिंसादोष लगै धुव ताके। संजमभंग होहिं सब बाके ॥
तातै जथालाभ आहारी। मुनिकहँ जोग जानु निरधारी १३७
भिच्छाकरि जो असन बखानै। तहा अरंभ दोष नहिं जानै।
ताहूमें अनुराग न धरई। सोई जोग अहार उचरई ॥ १३८ ॥
दिनमें भलीभांति सब दरसत। दया पलै हिंसा नहिं परसत।
रैनअसन सरवथा निषेधी। दिनमें जोग अहार अवेधी॥१३९॥
जो रसआस धरै मनमाही। तो अशुद्ध उर होय सदाही ॥
अंतरसंजमभाव सु घाते। तातै रसइच्छा तजि खाते ॥१४०॥
मद्यमास अरु शहदअपावन। इत्यादिक जे वस्तु घिनावन ॥
तिनको त्याग सरवथा होई। सोई परमपुनीत रसोई ॥१४१॥
सकलदोष तजि जो उपजै है। सोई जोग अहार कहै है ॥
वीतरागता तन सो धारी। गहै ताहि मुनिवृंद विचारी॥१४२॥

(२९)

द्रुमिला।

जिन बालपने मुनि भार धरे, अथवा जिनको तन वृद्ध अती।
अथवा तप उग्रतै खेद जिन्हें, पुनि जो मुनिको कोउ रोग हती॥

तब सो मुनि आतमशक्ति प्रमान, चरो चरिया निजजोग गती।
गुनमूल नहीं जिमि घात लहै, सो यही जतिमारग जानु जती ॥

दोहा ।

अतिकठोर आचरन जहँ, संजमरंग अभंग ।
सोई मग उतसर्गजुत, शुद्धसुभाव-तरंग ॥ १४४ ॥
ऐसी चरिया आचरै, तेई मुनि पुनि मीत ।
कोमलमगमें पग धरै, देखि देहकी रीत ॥ १४५ ॥
निज शुद्धातमतत्त्वकी, जिहि विधि जानै सिद्ध ।
सोई चरिया आचरै, अनेकांतके वृद्ध ॥ १४६ ॥
अरु जे कोमल आचरन, आचरही अनगार ।
तेऊ पुनि निज शकति लखि, करहिं कठिन आचार ॥१४७॥
संजमभंग न होय जिमि, रहै मूलगुन संग ।
शुद्धातममें थिति बढ़ै, सोइ मग चलहि अभंग ॥ १४८॥
कठिनक्रिया उतसर्गमग, कोमलमग अपवाद ।
दोनों मग पग धारही, सुमुनि सहितमरजाद ॥ १४९ ॥
जब जैसी तनकी दशा, देखहिं मुनि निरगंथ ।
तब तैसी चरिया चरै, सहित मूलगुन पंथ ॥ १५० ॥
जो दोनों मगकेविषै, होय विरोधप्रकास ।
तो मुनिमारग नहिं चलै, समुझो बुद्धिविलास ॥ १५१ ॥
ज्यों दोनों पगसों चलत, मारग कटत अमान ।
त्यों दोनों मग पग धरत, मिलत वृंद शिवथान ॥ १५२ ॥

(३०)

मनहरण ।

नानाभांति देशको सुभाव पहिचानि पुनि, शीतग्रीषमादि-रितु ताहूको परखिकै ॥ तथा कालजनित सु खेदहूको वेदि औ, उपासकी शकति वृंद ताहूको निरखिकै ॥ येई भेद भली भाँति जानकरि अहो मुनि, आहारविहार करो संजम सु रखिकै । जामें कर्मबंध अल्प बँधै ताही विधिसेती, आचरन करो अनेकात रस चखिकै ॥ १५३ ॥

चौपाई ।

जे उतसर्गमार्गके धारी । ते देशरु कालादि निहारी ॥
वाल वृद्ध खेदित रुजमाहीं । मुनि कोमल आचरनकराहीं॥ १५४॥
जामें संजम भंग न होई । करमप्रबंध बँधै लघु सोई ॥
शकति लिये न मूलगुन घातै । यहु मग तिनको उचित सदातै॥
अरु जे अपवादिकमग ध्याता । सव विधि देशकालके ज्ञाता ॥
ते मुनि चारिहु दशामँझारी । होउ सुजोग अहारविहारी १५६
संजमरंग भंग जहँ नाहीं । ताही विधि आचरहु तहाँ ही ॥
शकति न लोपि न मूलहु घातो । अलपबंधकी क्रिया करातो ॥

दोहा ।

कोमल ही मगके विषै, जो इकंत वुधि धार ।
अनुदिन अनुरागी रहै, अरु यह करै विचार ॥ १५८ ॥

कोमलहू मग तो कही, जिन सिद्धांतमँझार ।
हम याही मग चलहिंगे, यामें कहा विगार ॥ १५९ ॥
तो वह हठग्राही पुरुष, संजमविमुख सदीव ।
शकति लोपि करनी करत, शिथिलाचारी जीव ॥ १६० ॥
ताको मुनिपद भंग है, अनेकांतच्युत सोय ।
बाँधै करम विशेष सो, शुद्ध सिद्ध किमि होय ॥ १६१ ॥
अरु जे कठिनाचार ही, हठकरि सदा करात ।
कोमल मग पग धारतें, लघुता मानि लजात ॥ १६२ ॥
देशकालवपु देखिकै, करहिं नाहिं आचार ।
अनेकांतसों विमुख सो, अपनो करत विगार ॥ १६३ ॥
वह अतिश्रमतै देह तजि, उपजै सुरपुर जाय ।
संजम अम्रत वमन करि, करम विशेष बँधाय ॥ १६४ ॥
तातै करम बँधै अलप, सधै निजातम शुद्ध ।
सोई मग पग धारिवो, संजमसहित विशुद्ध ॥ १६५ ॥
है सरवज्ञ जिनिंदको, अनेकांत मत मीत ।
तातै दोनों पंथसों, हे मुनि राखो रीत ॥ १६६ ॥
कँहु कोमल कहुँ कठिन व्रत, कहुँ जुगजुत वरतंत ।
शुद्धातम जिहि विधि सधै, वह मुनिमग सिद्धंत ॥ १६७ ॥
संजमभंग वचायकै, देश काल वपु देखि ।
कोमल कठिन क्रिया करो, करम न बँधै विशेखि ॥ १६८ ॥

अरु अस हठ मति राखियो, संजम रहै कि जाहि ।
हम इक दशा न छॉड़ि है, सो यह जिनमत नाहि ॥१६९॥
जैसो जिनमत है सोई, कहो तुम्हैं समुझाय ।
जो मगमें पग धारि मुनि, पहुंचे शिवपुर जाय ॥ १७० ॥
कहूं अकेलो है यही, जो मारग अपवाद ।
कहूं अकेलो लसतु है, जो उतसर्ग अनाद ॥ १७१ ॥
कहुं उतसर्गसमेत है, यहु मारग अपवाद ।
कहुं अपवादसमेत है, मगउतसर्ग अवाद ॥ १७२ ॥
ज्यों संजमरच्छा वनत, त्यों ही करहिं मुनीश ।
देशकालवपु देखिकै, साधहिं शुद्ध सुईश ॥ १७३ ॥
पूरव जे मुनिवर भये, ते निजदशानिहार ।
दोनों मगकी भूमिमें, गमन किये सुविचार ॥ १७४ ॥
पीछे परमुतकिष्ट पद, ताहि ध्याय मुनिराय ।
क्रियाकांडतै रहित है, शुद्धातम लव लाय ॥ १७५ ॥
निज चैतन्यस्वरूप जो, है सामान्यविशेप ।
ताहीमें थिर होयके, भये शुद्ध सिद्धेश ॥ १७६ ॥
जो या विधिसों और मुनि, है सुरूपमें गुप्त ।
सो निजज्ञानानंद लहि, करै करमको लुप्त ॥ १७७ ॥
यह आचारसुविधि परम, पूरन भयौ अमंद ।
मुनिमगको सो जयति जय, वंदत वृंद जिनिंद ॥१७८॥

अधिकारान्तमगल ।

मंगलदायक परमगुरु, श्रीसरवज्ञ जिनिंद ।
वृंदावन वंदन करत, करो सदा आनंद ॥ १७९ ॥

इति श्रीमत्कुन्दकुन्दाचार्यकृत परमागम श्रीप्रवचनसारजीकी वृंदावन अग्रवाल काशीवासीकृत भाषाविषै आचारविधिचारित्राधिकार नामा सातया अधिकार सपूरन भया ।

मिति पौष शुक्ल अष्टमी ८ मगलवार सं० १९०५ पाच काशीमध्ये निजहस्ते लिखित वृन्दावनेन स्वपरोपकाराय । इहा ताईं सर्वगाथा २३२ अर भाषाके सर्व छद ९०६ नवसे छह सो जयवत होहु । श्रीरस्तु मगलमस्तु ॥ ॥ ॥ ॥

ॐ नम सिद्धेभ्य ।

अथाष्टम एकाग्ररूपमोक्षमार्गाधिकारः ।

मगलाचरण । दोहा ।

सिद्धशिरोमनि सिद्धप्रद, वंदों सिद्ध महेश ।
सो इत नित मंगल करो, मैटो विघन कलेश ॥ १ ॥
सम्यकदरशन ज्ञान व्रत, तीनों जत्र इकत्र ।
सोई शिवमग नियतनय, है शुद्धातम तत्र ॥ २ ॥
तथा जिन्हें यह लाभ हुव, ऐसे जे मुनिराज ।
तिनहूको शिवमग कहिय, धरमी धरम समाज ॥ ३ ॥
तासु परापतिके विषै, जिनआगमको ज्ञानि ।
अवशि चाहिये तासतै, अभ्यासो जिनवानि ॥ ४ ॥

(१)

मनहरण ।

सम्यकदरश ज्ञान चारितकी एकताई, येही शुद्ध तीरथ त्रिवैनी शिवमग है । ताकी एकताई मुनि पाई जब सुपर, पदारथको भलीभाँति जानत उमग है ॥ ऐसो भेदज्ञान जिन-आगमहीसेती होत, संशयविमोह ठग लागै नाहिं लग है । ताहीतै जिनागम अभ्यास परधान कह्यौ, जाकी अनेकात जोत होत जगमग है ॥ ५ ॥

सरवज्ञभाषित सिद्धांत विनु वस्तुनिको, जथारथ निहचै न होत सरवथा है । विना सर्वदर्वनिको भलीभाँति जानै कहो,

कैसे निज आतमाको जानै श्रुति मथा है । याहीतै मुनिदवृंद शब्दब्रह्मको अभ्यासि, आपरूप जानि तामें होहि थिर जथा है ॥ तातै शिवमारगको मूल जिन आगम है, ताको पढ़ो सुनो गुनो यही सार कथा है ॥ ६ ॥

दोहा ।

जे जन जिनशासनविमुख, बहिरमुखी ते जीव ।
डाँवाडोल मिथ्यातवश, भटकत रहत सदीव ॥ ७ ॥
करता बनत त्रिलोकके, कबहुं भोगता होहि ।
इष्टानिष्ट विभावजुत, सुथिर न कबहूँ सोहि ॥ ८ ॥
ज्यों समुद्रमें पवनतै, चहुँदिशि उठत तरंग ।
त्यों आकुलतासों दुखित, लहै न समरसरंग ॥ ९ ॥
जब अपनेको जानई, ज्ञानानंदसरूप ।
तब न कबहुं परदरवको, करता बनै अनूप ॥ १० ॥
जो आतम निज ज्ञानकरि, लोकालोक समस्त ।
प्रगट पानकरि आपमें, सुथिर रहत परशस्त ॥ ११ ॥
ऐसो जो भगवान यह, चिदानंद निरद्वंद ।
सो जिनशासनतै लखहिं, महामुनिनिके वृंद ॥ १२ ॥
तव ताको सरधान अरु, ज्ञान जथारथ धार ।
ताहीमें थिर होयके, पावै पद अविकार ॥ १३ ॥
तातै जिनआगम बड़ो, उपकारी पहिचान ।
ताको वृंद पढ़ो सुनो, यह उपदेश प्रधान ॥ १४ ॥

(२)

मत्तगयन्द ।

जो मुनिको नहिं आगमज्ञान, सो तो निज औ परको नहिं जानै ।
आपु तथा परको न लखै तब, क्यों करि कर्म कुलाचल भानै ॥
जासु उदै जगजालविषै, चिरकाल विहाल भयो भरमानै ।
तातै पढ़ो मुनि श्रीजिनआगम, तो सुखसो पहुंचो शिवथानै १५

कवित्त छन्द ।

जिनआगमसों दरव भाव नो,—करमनिकी हो है तहकीक ।
तब निजभेदज्ञानबलकरिकै, चूरै करम लहै शिव ठीक ॥
तिस आगमतै विमुख होयकै, चहै जो शिवसुख लहों अधीक ।
सो अजान विनु तत्त्वज्ञान नित, पीटत मूढ सांपकी लीक १६॥
आगमज्ञानरहित नित जो मुनि, कायकलेश करै तिरकाल ।
ताको सुपरभेद नहिं सूझत, आगम तीजा नयन विशाल ॥
तब तहँ भेदज्ञान विनु कैसे, चलै शुद्ध शिवमारग चाल ।
सो विपरीत रीतकी धारक, गावत तान ताल विनु ख्याल १७

दोहा ।

ज्यों ज्यों मिथ्यामग चलै, त्यों त्यों वधै सोय ।
ज्यों ज्यों भींजै कामरी, त्यों त्यों भारी होय ॥ १८ ॥

(३)

सोरठा ।

आगमचक्षू साध, अक्षचक्ष जगजीव सब ।

---

१ तीसरा नेत्र । २ मुनियोंके नेत्र शास्त्र ही हैं । ३ संसारी जीवोंके नेत्र इन्द्रिया हैं ।

देव औधिदृग लाध, सिद्ध सर्वचक्षू[2] विमल ॥ १९ ॥
तातै यह उर आनि, अनेकांत जाकी धुजा ।
सो आगम पहिचानि, पढ़ो सुनो भवि वृंद नित ॥ २० ॥
आगम ही है नैन, शिवसुखइच्छुक मुनिनिके ।
यों भाषी जिनवैन, स्वपरभेदविज्ञानप्रद ॥ २१ ॥

(४)

माधवी ।

जिनआगममें सब दर्वनिको, गुनपर्जविभेद भली विधि साधा ।
तिस आगमहीतै महामुनि देखकै, जानै जथारथ अर्थ अगाधा ॥
तब भेदविज्ञान सुनैन प्रमान, निजातम वृंद लहै निरबाधा ।
अपने पदमें थिर होकरिकै, अरिको हरिकै सु वरै शिवराधा ॥२२॥

जिनवानीमहिमा—मनहरण ।

एक एक दर्वमें अनंतनंत गुन पर्ज, नित्यानित्य लच्छनसों जुदे जुदे धर्म है । ताको जिनवानी ही अबाधरूप सिद्ध करै, हरै महा मोहतम अंतरको भर्म है ॥ ताहीकी सहायतै सु भेदज्ञाननैन खोलि, जानै महामुनि शुद्ध आतमको मर्म है । सोई जगदंबको अलंब[3] करै वृंदावन, त्यागिकै विलंब सदा देत पर्म शर्म है ॥ २३ ॥

(५)

प्रथम जिनागम अभ्यासकरि यहां जाके, सम्यकदरश

---

१ देवोंके अवधिज्ञानरूपी नेत्र हैं । २ सिद्ध भगवान सर्वचक्षु अर्थात् सबको देखनेवाले है । ३ अवलम्बन—आसरा ।

सरधान नाहिं भयौ है। ताके दोऊ भातिको न संजम विराजै कहूं, ऐसे जिनभाषित सुवेद वरनयौ है॥ संजम सुभावसों रहित जब भयौ तब, निहचै असंजमीकी दशा परिनयौ है। कैसे तव ताको मुनिपद सोहै वृंदावन, सांची गैल छांड़िके सो कांची गैल लयौ है॥ २४॥

दोहा।

प्रथम जो आगमज्ञानतै, रहित होय सरधान।
भेदज्ञान विनु किमि करै, सो निजपर पहिचान॥ २५॥
तव कषायसंमिलित जो, मोहराग परिनाम।
ताके वश होकै धरौ, विषयकषाय मुदाम॥ २६॥
इद्रीविषयनिकेविषै, सो परिविरत कराय।
छहों कायके जीवको, वाधक तव ठहराय॥ २७॥
स्वेच्छाचारी जीव वह, ताको मुनिपद केम।
सर्वत्यागको है जहा, मुनिपदवीमें नेम॥ २८॥
तैसे ही पुनि तासुके, निरविकलप समभाव।
परमातम निज ज्ञानघन, सोऊ नाहिं लखाव॥ २९॥
अरु जे ज्ञेयपदार्थके, है समूह जगमाहिं।
तामें ज्ञान सुछंद तसु, वरतत सदा रहाहिं॥ ३०॥
याहीतै निजरूपमें, होय नहीं एकत्र।
ज्ञान वृत्ति चंचल रहै, परसै सुथिर न तत्र॥ ३१॥

---

१ रास्ता—मार्ग। २ प्रवृत्ति। ३ चारित्र।

देव औधिदृग[1] लाध, सिद्ध सर्वचक्षू[2] विमल ॥ १९ ॥
तातै यह उर आनि, अनेकांत जाकी धुजा ।
सो आगम पहिचानि, पढ़ो सुनो भवि वृंद नित ॥ २० ॥
आगम ही है नैन, शिवसुखइच्छुक मुनिनिके ।
यों भाषी जिनवैन, स्वपरभेदविज्ञानप्रद ॥ २१ ॥

(४)

माधवी ।

जिनआगममें सब दर्वनिको, गुनपर्जविभेद भली विधि साधा ।
तिस आगमहीतै महामुनि देखकै, जानै जथारथ अर्थ अगाधा ॥
तब भेदविज्ञान सुनैन प्रमान, निजातम वृंद लहै निरबाधा ।
अपने पदमें थिर होकरिके, अरिको हरिके सु वरै शिवराधा ॥२२॥

जिनवानीमहिमा—मनहरण ।

एक एक दर्वमें अनंतनंत गुन पर्जे, नित्यानित्य लच्छनसों जुदे जुदे धर्म है । ताको जिनवानी ही अबाधरूप सिद्ध करै, हरै महा मोहतम अंतरको भर्म है ॥ ताहीकी सहायतै सु भेदज्ञाननैन खोलि, जानै महामुनि शुद्ध आतमको मर्म है । सोई जगदंबको अलंब[3] करै वृंदावन, त्यागिके विलंब सदा देत पर्म शर्म है ॥ २३ ॥

(५)

प्रथम जिनागम अभ्यासकरि यहां जाके, सम्यकदरश

1 देवोंके अवधिज्ञानरूपी नेत्र है । २ सिद्ध भगवान सर्वचक्षु अर्थात् सबको देखनेवाले है । ३ अवलम्बन—आसरा ।

सरधान नाहिं भयौ है। ताके दोऊ भांतिको न संजम विराजै कहूं, ऐसे जिनभाषित सुवेद वरनयौ है ॥ संजम सुभावसों रहित जब भयौ तब, निहचै असंजमीकी दशा परिनयौ है। कैसे तब ताको मुनिपद सोहै वृंदावन, सांची गैल छांड़िके सो कांची गैल लयौ है ॥ २४ ॥

दोहा।

प्रथम जो आगमज्ञानतें, रहित होय सरधान।
भेदज्ञान विनु किमि करै, सो निजपर पहिचान ॥ २५ ॥
तब कषायसमिलित जो, मोहराग परिनाम।
ताके वश होके धरो, विषयकषाय मुदाम ॥ २६ ॥
इंद्रीविषयनिकेविषै, सो परिवरत कराय।
छहों कायके जीवको, वाधक तब ठहराय ॥ २७ ॥
स्वेच्छाचारी जीव वह, ताको मुनिपद केम।
सर्वत्यागको है जहा, मुनिपदवीमें नेम ॥ २८ ॥
तैसे ही पुनि तासुके, निरविकलप समभाव।
परमातम निज ज्ञानघन, सोऊ नाहिं लखाव ॥ २९ ॥
अरु जे ज्ञेयपदार्थके, है समूह जगमाहिं।
तामें ज्ञान सुछंद तसु, वरतत सदा रहाहिं ॥ ३० ॥
याहीतैं निजरूपमें, होय नहीं एकत्र।
ज्ञान वृत्ति चंचल रहै, परसै सुथिर न तत्र ॥ ३१ ॥

१ रास्ता—मार्ग। २ प्रवृत्ति। ३ चारित्र।

आगमज्ञान सु पुव्व जहँ, होय नहीं सरधान ।
तहां न संजम संभवे, यह अवाध परमान ॥ ३२ ॥
जाके संजम होय नहिं, तव मुनिपद किमि होय ।
शिवमग दूजो नाम जसु, देखो घटमें टोय[1] ॥ ३३ ॥
तातै आगमज्ञान अरु, तत्त्वारथसरधान ।
संजम भाव इकत्र जव, तवहिं मोखमग जान ॥ ३४ ॥

माधवी ।

जिन आगममें नित सात सुभंगकी, वृंद अभंग धुजा फहरावै ।
जिसको लखिके मुनि भेदविज्ञानि, सुसंजमसंजुत मोच्छ सिधावै ।
तिहिको तजिके जो सुछंदमती, अति खेद करै हठसों वहु धावै ।
वह त्यागिके सीखसुधारसको, नित ओसके बूंदसों प्यास बुझावै ॥ ३५ ॥

(६)

मनहरण ।

आगम ही जानै कहो कहा सिद्धि होत जो न, आपापर-माँहि सरधान शुद्ध आय है । तथा सरधान हूं पदारथमें आयौ तो, असंजमदशासों कहो कैसे मोख पाय है ॥ याहीतै जिनागमतै सुपरपदारथको, सत्यारथ जानि सरधान दिढ़ लाय है । फेरि शुद्ध संजमसुभावमें सुथिर होय, सोई चिदानंद वृंद, मोक्षको सिधाय है ॥ ३६ ॥

---

१ खोजके ।

तत्त्वनिमें रुचि परतीति जो न आई तो धौं, कहा सिद्ध होत कीन्हें आगम पटापटी। तथा परतीति प्रीति तत्त्वहूमें आई पै न, त्यागे रागदोष तौ तो होत है गटागटी॥ तबै मोखसुख वृंद पाय है कदापि नाहिं, तातें तीनों शुद्ध गहु छांडिके हटाहटी। जो तू इन तीन विन मोखसुख चाहै तौ तो, सूत न कपास करै कोरीसों लठालटी॥ ३७॥

(७)

आपने सुरूपको न ज्ञान सरधान जाके, ऐसो जो अज्ञानी-ताकी दशा दरसावै है। जितने करमको सो विवहार धर्म-करि, शत वा सहस्र कोटि जन्ममें खिपावै है॥ तितै कर्मको सु आपरूपमें सुलीन होय, ज्ञानी एक स्वासमात्र कालमें जलावै है। ऐसो परधान शुद्ध आतमीकज्ञान जानि, वृंदावन ताके हेत उद्यमी रहावै है॥ ३८॥

जाके शुद्ध सहज सुरूपको न ज्ञान भयौ, और वह आग-मको अच्छर रटतु है। ताके अनुसार सो पदारथको जानै, सरधानै औ ममत्त लिये क्रियाको अटतु है॥ तहां पुव्व खिरै नित नूतन करम बंधै, गोरखको धंधा नटवाजीसी नटतु है। आगेको वटत जात पाछे वछरू[1] चवात, जैसे दृगहीन[2] नर जेवरी[3] वटतु है॥ ३९॥

जाने निजआतमाको जान्यो भेदज्ञानकरि, इतनो ही

---

१ वछडा। २ अंधा। ३ रस्सी भांजता है।

आगमज्ञान सु पुव्व जहँ, होय नहीं सरधान ।
तहां न संजम संभवे, यह अवाध परमान ॥ ३२ ॥
जाके संजम होय नहिं, तव मुनिपद किमि होय ।
शिवमग दूजो नाम जसु, देखो घटमें टोयँ ॥ ३३ ॥
तातैं आगमज्ञान अरु, तत्त्वारथसरधान ।
संजम भाव इकत्र जव, तवहिं मोखमग जान ॥ ३४ ॥

माधवी ।

जिन आगममें नित सात सुभंगकी, वृंद अभंग धुजा फहरावे ।
जिसको लखिके मुनि भेदविज्ञानि, सुसंजमसंजुत मोच्छ सिधावे ।
तिहिको तजिके जो सुछंदमती, अति खेद करै हठसों वहु धावै ।
वह त्यागिके सीखसुधारसको, नित ओसके बूंदसों प्यास बुझावै ॥ ३५ ॥

(६)

मनहरण ।

आगम ही जानै कहो कहा सिद्धि होत जो न, आपापरमाहिं सरधान शुद्ध आय है । तथा सरधान हू पदारथमें आयौ तो, असंजमदशासों कहो कैसे मोख पाय है ॥ याहीतै जिनागमतै सुपरपदारथको, सत्यारथ जानि सरधान दिढ़ लाय है । फेरि शुद्ध संजमसुभावमें सुथिर होय, सोई चिदानंद वृंद, मोक्षको सिधाय है ॥ ३६ ॥

---

1 खोजके ।

तत्त्वनिमें रुचि परतीति जो न आई तो धौ, कहा सिद्ध होत कीन्हें आगम पठापठी। तथा परतीति प्रीति तत्त्वहूमें आई पै न, त्यागे रागदोष तौ तो होत है गठागठी॥ तवै मोखसुख **वृंद** पाय है कदापि नाहिं, तातै तीनों शुद्ध गहु छांड़िके हठाहठी। जो तू इन तीन विन मोखसुख चाहै तौ तो, **सूत न कपास करै कोरीसों लठालठी** ॥ ३७ ॥

(७)

आपने सुरूपको न ज्ञान सरधान जाके, ऐसो जो अज्ञानी-ताकी दशा दरसावै है। जितने करमको सो विवहार धर्म-करि, शत वा सहस्र कोटि जन्ममें खिपावै है॥ तिते कर्मको सु आपरूपमें सुलीन होय, ज्ञानी एक स्वासमात्र कालमें जलावै है। ऐसो परधान शुद्ध आतमीकज्ञान जानि, **वृंदावन** ताके हेत उद्यमी रहावै है॥ ३८ ॥

जाके शुद्ध सहज सुरूपको न ज्ञान भयौ, और वह आग-मको अच्छर रटतु है। ताके अनुसार सो पदारथको जानै, सरधानै औ ममत्त लिये क्रियाको अटतु है॥ तहा पुव्व खिरै नित नूतन करम बंधै, गोरखको धंधा नटवाजीसी नटतु है। **आगेको वटत जात पाछे वर्छरू[1] चवात, जैसे दृगहीन[2] नर जेवँरी[3] वटतु है** ॥ ३९ ॥

जाने निजआतमाको जान्यो भेदज्ञानकरि, इतनो ही

---

१ वछडा। २ अधा। ३ रस्सी भाजता है।

आगमको सार अंश चंगा है । ताको सरधान कीनों प्रीतिसों प्रतीति भीनों, ताहीके विशेषमें अभंग रंग रंगा है ॥ वाहीमें त्रिजोगको निरोधिके सुथिर होय, तवै सर्वकर्मनिको क्षपत प्रसंगा है । आपुहीमें ऐसे तीनों साधै वृंद सिद्धि होत, जैसे **मन चंगा तो कठौतीमाहिं गंगा है ॥ ४० ॥**

(८)

माधवी ।

जिसके तनआदिविषैं ममता, वरतै परमानुहुके परमानी ।
तिसको न मिलै शिव शुद्धदशा, किन हो सब आगमको वह ज्ञानी
अनुराग कलंक अलंकित तासु, चिदंक लसै हमने यह जानी ।
जिमि लोकविषै कहनावत है,यह **ताँत वजी तव राग पिछानी॥**

दोहा ।

ज्यों करमाहिं विमल फटिक, देख परत सब शुद्ध ।
त्यों मुनि आगमतैं लखहिं, सकल तत्त्व अविरुद्ध ॥ ४२ ॥

तसु ज्ञाता चिद्रूपको, जानि करै सरधान ।
अरु आचार हु करत सो, जतिपथरीतिप्रमान ॥ ४३ ॥

ऐसे आगमज्ञान अरु, तत्त्वारथसरधान ।
संजम भाव इकत्रता, यह रतनत्रयवान ॥ ४४ ॥

सो सूच्छिम हू राग जो, धरै तनादिकमाहिं ।
तिते कलंकहितै सु तो, शिवपद पावै नाहिं ॥ ४५ ॥

तातै आगमज्ञानजुत, निरविकलप सु समाधि ।
वीतरागतासहित है, तब सब मिटै उपाधि ॥ ४६ ॥

सोरठा ।

जाके होय न ज्ञान, चिदानंद चिद्रूपको ।
सोई जीव अयान, ममता धरै तनादिमें ॥ ४७ ॥
सो न लहै निरवान, मोह गंसे[1] तसु हंसपर[2] ।
गुंभ्यौ[3] गुस ही आन, भेदज्ञान विनु नहि लखत ॥ ४८ ॥
तातै हे बुधिवान, लेहु स्वरूप निहार निज ।
चिद्विलास अमलान, तामें थिर हो सिद्ध हो ॥ ४९ ॥

(९)

सवैया-मात्रिक ।

जाके पचसमिति सित सोभत, तीन गुपत उर लसत उदार ।
पचिंद्रिनिको जो संवर करि, जीतै सकल कपायविकार ॥
सम्यकदर्श ज्ञान संपूरन, जाके हिये वृंद दुतिधार ।
शुद्ध संजमी ताहि कहै जिन, सो मुनि वरै विमल शिवनार५०

(१०)

छप्पय ।

जो जाने समतुल्य, शत्रु अरु वंधुवर्ग निजु ।
सुखदुखको सम जानि, गहै समता सुभाव हि जु ॥

---

१ गासी-फासी । २ आत्मापर । ३ चुभा है ।

थुति निंदा पुनि लोह कनक, दोनों सम जानै ।
जीवन मरन समान मानि, आकुलदल भानै ॥
सोई मुनि वृंद प्रधान है, समतालच्छनको धरै ।
निज साम्यभावमें होय थिर, शुद्ध सिद्ध शिव तिय वरै ॥ ५१ ॥

(११)

मत्तगयन्द ।

जो जन सम्यकदर्शन ज्ञान, चरित्र विशुद्ध सुभाविकमाही ।
एकहि वार भली विधिसों, करि उद्यम वर्त्तु है तिहि ठाही ॥
सो निज आतममें लवलीन, इकाग्रदशामहँ प्रापति आही ।
है तिनको परिपूरनरूप, मुनीश्वरको पद संशय नाहीं ॥ ५२ ॥

दोहा ।

ज्ञेयरु ज्ञायक तत्त्वको, जहां शुद्ध सरधान ।
सोई सम्यकदरश है, दूषनरहित प्रमान ॥ ५३ ॥
ताहि जथावत जानिबो, सो है सम्यकज्ञान ।
दरशज्ञानमें सुथिरता, सो चारित्र प्रधान ॥ ५४ ॥
येई तीनों भाव हैं, भावक आतम तास ।
आपहि आपु सुभावको, भावै थिर सुखरास ॥ ५५ ॥
इन भावनिके बढ़नकी, जहँ लगु हद्द प्रमान ।
तहँ लगु बढ़हिं परस्पर, सुगुनसहित गुनवान ॥ ५६ ॥
ये तिहुँ भाव सु अंग हैं, अंगी आतम तास ।
अंगी अंग सु एकता, सदा सधत सुखरास ॥ ५७ ॥

इमि एकता सुभाव जो, प्रनयौ आतम आप ।
सोई संजम भाव है, आप रूपमें व्याप ॥ ५८ ॥
सो जद्दिप तिहुँ भेदकरि, है अनेक परकार ।
तद्दिप एक स्वरूप है, निरविकलप नयद्वार ॥ ५९ ॥
जैसे एकपना त्रिविधि, मधुर आमलौ तीत ।
सुरस स्वाद तव मिलत जब, निरविकलप रसप्रीत ॥६०॥
तैसे सो संजम जदपि, रतनत्रयतैं भेद ।
तदपि सुभाविक एकरस, एकै गहै अखेद ॥ ६१ ॥
परदरवनिसों भिन्न नित, प्रगट एक निजरूप ।
ताहि सु मुनिपद कह हुआ, शिवमग कहो अनूप ॥६२॥
सो शिवमगको तीन विधि, परजैनयके द्वार ।
भापतु हैं विवहारकरि, जाको भेद अपार ॥ ६३ ॥
अरु एकतासरूप जो, शिवमग वरनन कीन ।
दरवार्थिकनय द्वारतैं, सो निहचै रसलीन ॥ ६४ ॥
जेते भेदविकल्प है, सो सव है विवहार ।
अरु जो एक अभेदरस, सो निहचै निरधार ॥ ६५ ॥
ऐसो शिवमग जानिके, निज आतमहितहेत ।
हे भवि वृंद करो गहन, जो अवाध सुख देत ॥ ६६ ॥

(१२)

छप्पय ।

जिस मुनिके नहिं, सुपरभेदविज्ञान विराजै ।
अज्ञानी तसु नाम, कही जिनवर महाराजै ॥

सो परदर्वहिं पाय, राग विद्वेष मोह धरि।
विविध करमको बंध, करत अपनो चिकारकरि॥
निज चिदानंदके ज्ञान विनु, शुद्ध सिद्धपद नहि ठरत।
सो **पाटकीटके न्यायवत**, नित नूतन बंधन वटत॥ ६७॥

(१३)

सवैया—मात्रिक।

जो मुनि आतमज्ञान वृंद जुत, सो पर दरवनिके जे थंम।
तिनमें मोहित होत न कबहूँ, करत न राग न दोष अरंम॥
सो निजरूपमाहिं निहचै थिर, है इकाग्र संजमजुत संम।
सोई विविध करम छय करिके, देहि मोखमग सनमुख बंम६८

दोहा।

इहि प्रकार निरधार करि, भाषै शिवमग पर्म।
शुद्धपयोगमयी सुमुनि, गहैं लहै शिवशर्म॥ ६९॥

कवित्त—मात्रिक।

जाके हिये मोहमिथ्यामत, हे भवि पूर रह्यौ भरपूर।
कैसहुकै न तजै हठ सो सठ, ज्यों महि गहै गोह पग भूर॥
जो कहुं सत्य सुनै तउ उरमें, धरै न सरधा अतिहि करूर।
ताको यह उपदेश अफल जिमि, **कूकरके मुखमाहिं कपूर** ७०
तातैं अब इस कथन मथनको, सुनो सार भवि धरि उपयोग।
सम्यक दरशन ज्ञानचरितमें, सुथिर होहु जुत शुद्धपयोग॥

यही सुमुनिपद वृंद अनूपम, यातैं कटै करमके रोग।
ताकों गहो मिल्यौ यह औसर, जैसे नदी नाव संजोग ७१॥

अधिकारान्तमगल—दोहा

पूरन भयौ सुखद परम, शिवमग शुद्धसरूप।
वंदों श्रीजिनदेवको, जो लहि कही अनूप॥ ७२॥

इति श्रीमत्कुन्दकुन्दाचार्यकृत परमागम श्रीप्रवचनसारजीकी वृंदावन अग्रवाल काशीवासीकृतभाषाविषै एकाग्ररूप मोक्षमार्गका स्वरूप कथन ऐसा आठवॉ अधिकार पूरा भया। पौष शुद्ध पूरनमासी सोमवार सवत् १९०५।

इहा ताई सर्व गाथा २४५ अरु भाषाके छद नवसै अटहत्तर ९७८। सो जयवत होहु। मगलमस्तु। श्रीरस्तु।

ओं नमः सिद्धेभ्यः ।

अथ नवमः शुभोपयोगरूपमुनिपदाधिकारः ।

मगलाचरण–दोहा ।

श्रीजिनवानी सुगुरु पद, वंदों शीस नवाय ।
सकल विघन जातै मिटै, भविक वृंद सुखदाय ॥ १ ॥
अब वरनत शुभभावजुत, मुनि पदवीकी रीति ।
श्रुति मथि गुरु संछेपतै, करो सुभवि परतीति ॥ २ ॥

(१)

दो विधिके मुनि होहिं इमि, कही जिनागममाहिं ।
एक शुद्धउपयोगजुत, इक शुभमगमें जाहिं ॥ ३ ॥
जे सुविशुद्धुपयोगजुत, सदा निरास्रव तेह ।
बाकी आस्रवसहित है, शुभ उपयोगी जेह ॥ ४ ॥

द्रुमिला ।

जिनमारगमें मुनि दोय प्रकार, दिगंबररूप विराजत है ।
इक शुद्धुपयोग विशुद्ध धरें, जिनतें करमास्रव भाजत है ॥
दुतिये शुभ भाव दशा सु धरैं, तिनके करमास्रव छाजत है ।
यह भाविक भेद सनातनतै, जिनआगम या विधि गाजत है ॥
सबही परदर्वनिसों ममता, तजिके मुनिको व्रत धीर धरै ।
चित चंचल अंशकषाय उदै, नहिं आतम शुद्ध प्रकाश करै ॥
मुनि शुद्धपयोगिनिके ढिगमें, पुनि जे वरतै अनुराग भरैं ।
कहिये अब ते मुनि है कि नही, इमि पूछत शिष्य विनीत वरै॥

दोहा ।

याको उत्तर प्रथमही, ग्रंथारभतमाहि ।
कहि आये हम है भविक, पुनि समुझो इहि ठाहिं ॥ ७ ॥

माधवी ।

निज धर्मसरूप जबै प्रनवै, यह आतम आप अध्यातम ध्याता ।
तव शुद्धपयोगदशा गहिके, सो लहै निरवान सुखामृत ख्याता ॥
अरु होत जहा शुभरूपपयोग, तहा सुरगादि विभौ मिलि जाता ।
यह आपुहि है अपने परिनामनिको, फल भोगनिहार विधाता ॥

दोहा ।

शुभपयोगसों और पुनि, शुद्धातम निजधर्म ।
तिनसों एक अरथविषै, है समवाय सुपर्म ॥ ९ ॥
एकातमहीके विषै, दोनों भाव रहाहिं ।
तातै दोनों भावको, धरम कही श्रुतिमाहिं ॥ १० ॥
याही नयतै हे भविक, शुभ उपयोगी साध ।
तेऊ मुनि हैं पै तिन्हें, आस्रव कर्म उपाध ॥ ११ ॥
शुद्धपयोगीके नहीं, करमास्रवको लेश ।
ते सव कर्म विनाशिकै, होहिं शुद्ध सिद्धेश ॥ १२ ॥

---

१ यह पहले अध्यायकी ग्यारहवीं गाथाका अनुवाद है, जो कि पहले अध्याय में छप चुका है (पृष्ठ २० में) अन्तर इतना है कि, वहां छन्द मत्तगयन्द था, यहां प्रत्येक चरणमें दो दो लघु (निज, तव, अरु, यह) डालकर माधवी बना दिया है ।

(२)

रूपसवैया ।

जो मुनिके उर अंतरमाही, यह परनति वरतै सुनि भव्वै[1] ।
अरहंतादि पंचगुरुपदमें, भगत उमंग रंग रसतव्व ॥
तथा परम आगम उपदेशक, तिनसों वच्छलेता[2] विनु गव्वै[3] ।
सो शुभरूप कहावत चरियाँ[4], यों वरनी जिनगनधर पव्व ॥

छप्पय ।

जो परिगह परिहार, सुमुनिमुद्राको धारै ।
पै कषायके अंश, तासुके उदय लगारै ॥
तातै शुद्धस्वरूपमाहिं, थिरता नहिं पावै ।
तब पन शुद्धस्वरूप, सुगुरुसों प्रीति बढावै ।
अरु जे शुद्धातमधरमके, उपदेशक तिनमें हरखि ।
वर भक्ति सु सेवा प्रीतिजुत, बरततु है मुनिमग परखि ॥१४॥

सोरठा ।

तिस मुनिके यह जानु, इतनहिं राग सु अंशकरि ।
पर दरवनिमें मानु, है प्रवृत्ति निहचैपनै ॥ १५ ॥
सो शुद्धातमरूप, ताकी थिरतासों चलित ।
यों भाषी जिनभूप, वह शुभभावचरित्रधर ॥ १६ ॥
पंच परमगुरुमाहिं, भगत सु सेवा प्रीति जहँ ।
सो शुभमग कहलाहिं, शुभ उपयोगिनिके चिह्न ॥ १७ ॥

---

१ भव्य । २ वत्सलता । ३ गर्व—अभिमान । ४ चर्या—वृत्ति ।

(३)

मनहरण ।

महामुनिराजनिकी वानीसेती थुति करै, कायासेती नुति करै महामोद भरी है । आवत विलोकि उठि खड़े होहि विनै धारि, चालै तब पीछै चलै शिष्यभाव धरी है ॥ तिनके शरीरमाहिं खेद काहू भाँति देखै, ताको दूर करै जथाजोग विसतरी है । सराग चरित्रकी अवस्थामाहिं मुनिनिको, येती क्रिया करिवो निषेध नाहिं करी है ॥ १८ ॥

दोहा ।

शुभ उपयोगी साधुको, ऐसो वरतन जोग ।
शुद्धुपयोगी सुमुनि प्रति, जहँ आतमनिधिभोग ॥ १९ ॥
जो श्रीमहामुनीशके, कहुँ उपसर्गवशाय ।
खेद होय तो सुथिर-हित, वैयावृत्ति कराय ॥ २० ॥
जातैं खेद मिटै वहुरि, सुथिर होय परिनाम ।
तव शुद्धातम तत्त्वको, ध्यावै मुनि अभिराम ॥ २१ ॥
शुद्धातमके लाभतै, रहित जु मिथ्यातीय ।
ताकी सेवादिक सकल, यहां निषेध करीय ॥ २२ ॥

(४)

मत्तगयन्द ।

सम्यकदर्शन ज्ञान दशा, उपदेश करै भविको भवतारी ।
शिष्य गहै पुनि पोषहिं ताहि, भली विधिसों धरमामृतधारी ॥

श्रीजिनदेवके पूजनको, उपदेश करै महिमा विसतारी।
है यह रीति सरागदशामहँ, वृंद मुनिंदनिको हितकारी॥२३॥

दोहा।

शुद्धुपयोगीके परम, वीतरागता भाव।
तातै तिनके यह क्रिया, होत नाहिं दरसाव॥ २४॥

(५)

मत्तगयद।

जामहँ जीव विरोध लहै नहिं, ताविधिसों नितही विधि ज्ञाता।
चारि प्रकारके संघ मुनीशको, ताको करै उपकार विख्याता॥
आपने संजमको रखिके, निहचै सबके सुखदायक ताता।
या विधि जो वरतै मुनि सो, परधान सरागदशामहँ आता२५

दोहा।

श्रावक अरु पुनि श्राविका, मुनि अरजिका प्रमान।
येई चारों संघके, स्वामी सुमुनि सयान॥ २६॥
शुद्धातमअनुभूतिके, ये साधक चहुसंग।
तातै नित रच्छा करहिं, इनकी सुमुनि उमंग॥ २७॥
वैयावृत्तादिक क्रिया, जा विधि बनै उदार।
ताही विधिसों करत है; ते सराग अनगार॥ २८॥
हिंसा दोष बचायके, अपनो संजम राख।
संघानुग्रहमें रहै, सो प्रधान मुनि भाख॥ २९॥

(६)

कवित्त–मात्रिक।

जो मुनि और मुनिनिके कारन, वैयावरत करनके हेत।
छहों कायको बाधक ह्वै करि, उद्यमवान होय वरतंत॥
तो सो मुनि न होय यह जानो, है वह श्रावक सुविधि समेत।
जातें वह अरंभजुत मारग, श्रावकधरममाहिं छवि देत॥२०॥

कुंडलिया।

तातैं जे केई सुमुनि, गहैं सराग चरित्त।
ते परमुनिको खेद लखि, ठानैं वैयावृत्त॥
ठानैं वैयावृत्त तहां, निज संजम राखो।
परकी करो सहाय; जथा जिनश्रुतिमें भाखो॥
षटकाया सविरोध, क्रिया गृहमध्य करांतैं।
मुनिको सुपद बचाय, उचित परहितकृत तातैं॥ २१॥

(७)

माधवी।

जिनशासनके अनुसार धरैं व्रत, जे मुनिराय तथा गृहवासी।
तिनको उपकार करो सु दया धरि, त्यागि हिये फलकी अभिलासी॥
इहि भाँति किये जदि जो तुमको, शुभकर्म बँधै कछु तो नहिं हानी
यह रीति सरागचरित्रविषै, है सनातन वृंद जिनिंद प्रकासी॥२२॥

(८)

मनहरण।

पहैं काहू मुनिको जो रोगसों विपिन देखो, तथा भूख

प्यासकरि देखो जो दुचित है । तथा काहू भाँतिकी परी-
षहके जोगसेती, कायमें कलेश काहू मुनिके कुचित है ॥
तहां तुम आपनी शकतिके प्रमान मुनि, ताकी वैयावृत्ति
आदि करो जो उचित है । जातैं वह साध निरुपाध होय
वृंदावन, सहजसमाधमें अराधै जो सुचित है ॥ ३३ ॥

(९)

रोगी मुनि अथवा अचारज सुपूज गुरु, तथा बाल वृद्ध
मुनि ऐसे भेद वरनी । तिनकी सहाय सेवा आदि हेत मुनि-
निको, लौकिक जनहूसों सुसंभाषन करनी ॥ जामें तिन
साधनके खेदको विछेद होय, ऐसे शुभ भावनिसों वानीको
उचरनी । सराग आनंदमें अनिंद वृंद विधि यह, सुपरोप-
कारी बुधि भवोदधितरनी ॥ ३४ ॥

(१०)

यह जो प्रशस्त रागरूप आचरन कहो, वैयावृत्त आदि
सो तो बड़ोई धरम है । मुनिमंडलीमें यह गौनरूप राजै
जातै, तहां रागभाव मंद रहत नरम है ॥ श्रावक पुनीतके
बड़ोई धरमानुराग, तातै तहां उतकिष्ट मुख्यता परम है ।
ताहीकरि परंपरा पावै सो परम सुख, निहचै बखानी श्रुति
यामें ना भरम है ॥ ३५ ॥

---

१ कचित्—कहीं । २ चित्स्वरूप आत्मा ।

(११)

कवित्त ।

यह प्रशस्त जो रागभाव सो, वस्तु विशेष जो पात्रविधान ।
तिनको जोग पायकरि सोई, फल विपरीत फलत पहिचान ॥
ज्यों कृषि समै विविध धरनी तहँ, अविधि धरनिमहँ बीज बुवान ।
सो विपरीत फलत फल निहचै, कारन सम कारज परमान ३६

(१२)

मनहरण ।

छदमस्थ बुद्धीने जो आपनी उकतिहीसों, देव गुरु धर्मादि पदारथ थापे है । व्रत नेम ध्यानाध्येन दानादि बखाने तहां, तामें जो सुरत होय प्रीति करि व्यापे है ॥ तासों मोख-पद तो सरवथा न पावै पै, उपावै पुन्यरूप भावबीज यों अलापे है । ताको फल भोगे देव मानुष शरीर धरि, फेरि सो जगतहीमें तपे तीनों तापे है ॥ ३७ ॥

कवित्त (३१ मात्रा) ।

वीतराग सरवज्ञदेवकरि, जो भाषित है वस्तुविधान ।
देवधर्म गुरु ग्रंथ पदारथ, तिनमें जो प्रतीति रुचिवान ॥
सो शुभरागभाव वृंदावन, निश्चयसों कीजो सरधान ।
ताको फल साच्छात पुन्य है, परंपरा दे है शिवथान ॥३८॥

दोहा ।

तातें गहि भवि वृंद अब, अनेकांतको मर्न ।
ताहीके अनुसार करि, शुभपयोग आचर्न ॥ ३९ ॥

प्यासकरि देखो जो दुचित है । तथा काहू भाँतिकी परी-
षहके जोगसेती, कायमें कलेश काहू मुनिके कुंचित है ॥
तहां तुम आपनी शकतिके प्रमान मुनि, ताकी वैयावृत्ति
आदि करो जो उचित है । जातैं वह साध निरुपाध होय
वृंदावन, सहजसमाधमें अराधै जो सुचित है ॥ ३३ ॥

(९)

रोगी मुनि अथवा अचारज सुपूज गुरु, तथा बाल वृद्ध
मुनि ऐसे भेद वरनी । तिनकी सहाय सेवा आदि हेत मुनि-
निको, लौकिक जनहूसों सुसंभाषन करनी ॥ जामें तिन
साधनके खेदको विछेद होय, ऐसे शुभ भावनिसों वानीको
उचरनी । सराग आनंदमें अनिंद वृंद विधि यह, सुपरोप-
कारी बुधि भवोदधितरनी ॥ ३४ ॥

(१०)

यह जो प्रशस्त रागरूप आचरन कहो, वैयावृत्त आदि
सो तो बड़ोई धरम है । मुनिमंडलीमें यह गौनरूप राजै
जातै, तहां रागभाव मंद रहत नरम है ॥ श्रावक पुनीतके
बड़ोई धरमानुराग, तातैं तहां उतकिष्ट मुख्यता परम है ।
ताहीकरि परंपरा पावै सो परम सुख, निहचै बखानी श्रुति
यामें ना भरम है ॥ ३५ ॥

---

१ क्वचित्—कहीं । २ चित्स्वरूप आत्मा ।

(११)

कवित्त ।

यह प्रशस्त जो रागभाव सो, वस्तु विशेष जो पात्रविधान ।
तिनको जोग पायकरि सोई, फल विपरीत फलत पहिचान ॥
ज्यों कृषि सैमै विविध धरनी तहँ, अविधि धरनिमहँ वीज वुवान ।
सो विपरीत फलत फल निहचै, कारन सम कारज परमान ३६

(१२)

मनहरण ।

छदमस्थ वुद्धीने जो आपनी उकतिहीसों, देव गुरु धर्मादि पदारथ थापै है । व्रत नेम ध्यानाध्येन दानादि बखाने तहां, तामें जो सुरत होय प्रीति करि व्यापै है ॥ तासों मोखपद तो सरवथा न पावै पै, उपावै पुन्यरूप भाववीज यों अलापै है । ताको फल भोगै देव मानुष शरीर धरि, फेरि सो जगतहीमें तपै तीनों तापै है ॥ ३७ ॥

कवित्त (३१ मात्रा) ।

वीतराग सरवज्ञदेवकरि, जो भाषित है वस्तुविधान ।
देवधर्म गुरु ग्रंथ पदारथ, तिनमें जो प्रतीति रुचिवान ॥
सो शुभरागभाव वृंदावन, निश्चयसों कीजो सरधान ।
ताको फल साच्छात पुन्य है, परंपरा दे है शिवथान ॥३८॥

दोहा ।

तातै गहि भवि वृंद अव, अनेकांतको सर्न ।
ताहीके अनुसार करि, शुभपयोग आचर्न ॥ ३९ ॥

ताको फल साच्छात लहि, पुन्यरूप सुखवृंद ।
परंपरासों मोखपद, पैहै आनँदकंद ॥ ४० ॥

(१३)

मनहरण ।

शुद्ध परमातम पदारथको जानै नाहिं, ऐसे जे अज्ञानी जीव जगमें वखाने हैं । जाके उर विषय कषाय भूरि भरि रह्यौ, ऐसे जगजंतको जे गुरुकरि माने है ॥ तिन्है भक्ति भावसेती सेवें अति प्रीति धारि, आहारादि दान दै हरष हिय आने है । ताको फल भोगैं सो कुदेव कुमनुष होय, रुलैं जग जालमें सो मूरख अयाने है ॥ ४१ ॥

आतमीक ज्ञान वीतराग भाव जाके नाहिं, तथा याकी कथा हू न रुचै रंच भरी है । मिथ्यामत माते नित विषयकषाय राते, ऐसेको जो गुरू मानि सेवै प्रीति धरी है ॥ आहारादि दान दै प्रधान पद माने निज, जाने मूढ़ सही मोहि यही निसतरी है । दोनों कर्म भार भरे कैसे भवसिंधु तरैं, पाथरकी नाव कहूं पानीमाहिं तरी है ॥ ४२ ॥

(१४)

इंद्रिनिके भोगभाव विषय कहावैं और, क्रोधादिक भाव ते कषायरूप वरनी । इन्हैं सर्व सिद्धांतमें पाप ही मथन करी, तथा इन्है धारै सोऊ पापी उर धरनी ॥ ऐसे पाप भारकरि भरे जे पुरुष ते सु,–भक्तनिको कैसे निसतारैं निरवरनी ।

आपु न तरेंगे औ न तारेंगे सु भक्तनिको, दोनों पाप भार भरे भोगै पाप करनी ॥ ४३ ॥

दोहा।

विषय कषायी जीवको, गुरुकरि सेयें मीत।
उत्तम फल उपजै नहीं, यह दिढ़ करु परतीत ॥ ४४ ॥

(१५)

मत्तगयद।

जो सब पाप क्रिया तजिकै, सब धर्मविषैं समता विसतारै।
ज्ञान गुनादि सबै गुनको, जो अराधत साधत है श्रुतिद्वारैं ॥
होंहिं सोई शिवमारगके, वर सेवनहार मुनीश उदारै।
आपु तरै भविको भव तारहिं, पावन पूज्य त्रिलोकमझारै ॥४५॥

(१६)

मनहरण।

अशुभोपयोग जो विमोह रागदोष भाव, तासतैं रहित होहि मुनी निरगंथ है। शुद्ध उपयोगकी दशामें केई रमै केई, शुभ उपयोगी मथै विवहार मंथ है ॥ तेई भव्य जीवनिको तारै है भवोदधितै, आपु शिवरूप पुन्यरूप पूज पथ है। तिनहीकी भक्तितै भविक शुभथान लहैं, ऐसे चित चेत वृंद भाषी जैनग्रंथ है ॥ ४६ ॥

(१७)

माधवी।

तिहि कारनतैं गुन उत्तमभाजन, श्रीमुनिको जब आवत देखो।
तब ही उठि वृंद खड़े रहिकै, पद वंदि पदांवुजकी दिगि पेखो॥

गुनवृद्ध विशेषनिकी इहि भाँति, सदीव करो विनयादि विशेखो ।
उपदेश जिनेशको जान यही, विधिसों वरतो चहुसंघ सरेखो ४७

(४८)

मनहरण ।

आवत विलोकि खड़े होय सनमुख जाय, आदरसों आइये आइये ऐसे कहिकै । अंगीकार करिकै सु सेवा कीजे वृंदावन, और अन्न पानादिसों पोखिये उमहिकै ॥ बहुरि गुननिकी प्रशंसा कीजे विनयसों, हाथ जोरे रहिये प्रनाम कीजे ठहिकै । मुनिमहाराज वा गुनाधिक पुरुषनिसों, याही भाँति कीजे श्रुतिसीखरीति गहिकै ॥ ४८ ॥

(४९)

छप्पय ।

जे परमागम अर्थमाहिं, परवीन महामुनि ।
अरु संजम तप ज्ञान आदि, परिपूरित हैं पुनि ॥
तिनहिं आवतो देखि, तबहि मुनिहूकहँ चहिये ।
खड़े होय सनमुख सुजाय, आदर निरवहिये ॥
सेवा विधि अरु परिनाम विधि, दोनों करिवो जोग है ।
है उत्तम मुनिमगरीति यह, जहँ सुभावसुखभोग है ॥ ४९ ॥

दोहा ।

दरवित जे मुनि भेष धरि, ते है श्रमनाभास ।
तिनकी विनयादिक क्रिया, जोग नहीं है भास ॥ ५० ॥

(२०)

रूपक कवित्त ।

संजम तप सिद्धांत सूत्र, इनहू करि जो मुनि है संजुक्त ।
जो जिनकथित प्रधान आतमा, सुपरप्रकाशकतै वर शुक्त ॥
तासु सहित जे सकल पदारथ, नहिं सरदहै जथा जिनउक्त ।
तव सो मुनि न होय यह जानो, है वह श्रमनाभास अजुक्त५१॥

(२१)

मत्तगयन्द ।

श्रीजिनशासनके अनुसार, प्रवर्ततु हैं जे महामुनिराई ।
जो तिनको लखि दोप धरै, अनआदरतै अपवाद कराई ॥
जे विनयादि क्रिया कही वृंद, करै न तहा सो सुहर्ष वढ़ाई ।
सो मुनि चारितभ्रष्ट कहावत, यों भगवंत भनी सुनि भाई ५२

(२२)

द्रुमिला ।

अपने गुनतै अधिके जे मुनी, गुन ज्ञान सु संजम आदि भरै ।
तिनसों अपनी विनयादि चहै, हम हू मुनि है इमि गर्व धरै ॥
तव सो गुनधारक होय तऊ, मुनि मारगतैं विपरीत चरै ।
वह मूढ़ अनंत भवावलिमें, भटकै न कभी भवसिंधु तरै ५३

(२३)

मत्तगयन्द ।

आपुविषै मुनिके पदके गुन, है अधिके उतकिष्ट प्रमानै ।
सो गुनहीन मुनीननकी, जो करै विनयादि क्रिया मनमानै ॥

तो तिनके उरमाहिं मिथ्यात,-पयोग लसै लखि लेहु सयानै ।
है यह चारितभ्रष्ट मुनी, अनरीति चलै जतिरीति न जानै ५४

दोहा ।

विनय भगत तो उचित है, बड़े गुनिनिकी वृंद ।
हीन गुनिनिको वंदतैं, चारित होत निकंद ॥ ५५ ॥

(२४)

कवित्त—मात्रिक ।

जद्दिप जिनसिद्धांत सूत्रकरि, जानत है निहचै सब वस्त ।
अरु कषाय उपशमकरि जो मुनि, करत तपस्या अधिक प्रशस्त ॥
जो न तजै लौकिक जनसंगति, तो न होय वह मुनि परशस्त ।
संगरंगतै भंग होय व्रत, यातैं तजिय कुसुंगत रस्त ॥ ५६ ॥

दोहा ।

जैसे अगिनि मिलापतै, शीतल जल है गर्म ।
तैसे पाय कुसंगको, होय मलिन शुभ कर्म ॥ ५७ ॥
तातैं तजो कुसुंग मुनि, जो चाहो कुशलात ।
बसो सुसंगत सुमुनिके, जुतविवेक दिनरात ॥ ५८ ॥
कही कुसंगतकी कथा, बहुत भाँति श्रुतिमाहिं ।
विषम गरल[1] सम त्यागि तिहि, चलो सुसंगति छाहिं ॥५९॥

(२५)

द्रुमिला ।

निरग्रंथ महाव्रतधारक हो करि, जो इहि भाँति करै करनी ।
वरतै इस लौकिक रीतिविषैं, करै वैदक[2] जोतिक[3] मंतरनी[4] ॥

१ विष । २ वैद्यक । ३ ज्योतिष । ४ मन्त्रविद्या ।

वह लौकिक नाम मुनी कहिये, परिभ्रष्ट दशा तिसकी वरनी
तपसंजमसंजुत होय तऊ, न तरै भवसागर दुस्तरनी ॥ ६० ॥

दोहा।

लौकिकजनमन मोदके, जेते विविध विधान।
तिनमें वरतै लगनजुत, सो लौकिक मुनि जान ॥ ६१ ॥
ताकी संगतिको तजहिं, उत्तम मुनि परवीन।
जातै संगति दोपतै, सज्जन होय मलीन ॥ ६२ ॥

(२६)

छप्पय।

तिस कारन मुनिको कुसंग, तजिकै यह चहियत।
निज गुनके समतूल होहि, कै अधिक सु महियत (१) ॥
तिन मुनिकी सतसगमाहिं, तुम वसौ निरंतर।
जो सव दुखतै मुक्ति दशा, चाहो अभिअंतर ॥
समगुन मुनिकी सतसंगतैं, होय सुगुनरच्छा परम।
गुनवृद्ध मुनिनिकी संगतै, वढ़ै सुगुन आतमधरम ॥ ६३ ॥

दोहा।

जलमें शीतल गुन निरखि, ताकी रच्छाहेत।
शीत भौनके कौनमें, राखहिं सुवुध सचेत ॥ ६४ ॥
यह समान गुनकी सुखद, संगति भाषी मीत।
अव भाषो गुनअधिकके, सतसंगतिकी रीत ॥ ६५ ॥
जैसे वरफ कपूर पुनि, शीत आदि सजोग।
होन नीर गुन शीत अति, यह गुन अधिक नियोग ॥६६॥

काव्य-(मात्रा २४)

तातै जे मुनि महामोख,-सुखके अभिलाखी ।
तिनको यह उपदेश, सुखद है श्रुतिकी साखी ॥
तजि कुसंग सरवथा, सुपथमें चलो वुधातम ।
वसो सदा सतसंगमाहिं, साधो शुद्धातम ॥ ६७ ॥

मनहरण ।

प्रथम दशामें शुभ उपयोगसेती उतपन्न जो प्रवृत्ति वृंद ताको अंगीकार है । पीछेसों सु संजमकी उतकिष्टताई-करि, परम दशाको अवधारो वुद्धिधार है ॥ पाछें सर्व वस्तुकी प्रकाशिनी केवलज्ञाना-नन्दमई शास्वती अवस्था जो अपार है । ताको सरवथा पाय अपने अतिंद्री सुख, तामें लीन होहु यह पूरो अधिकार है ॥ ६८ ॥

माधवी ।

तिस कारनतैं समुझाय कहौं, मुनि वृंदनिको सतसंगति कीजे।
अपने गुनके जे समान तथा, परधान मुनीनिकी संग गहीजे॥
जदि चाहत हौ सब दुःखनिको खय, तो यह सीख सु सीस धरीजे।
नित वास करो सतसंगतिमाहिं,कुसंगतिको सु जलंजलि दीजे६९

दोहा ।

ज्यों जुग मुकता सम मिलत, कीमत होत महान ।
त्यों सम सतसंगत मिलत, वढ़त सुगुन अमलान ॥७०॥

ज्यों पारस संजोगतैं, लोह कनक ह्वै जाय।
गरल[1] अमिय[2] सम गुनधरत, उत्तम संगति पाय ॥ ७१ ॥
जैसे लोहा काठ सँग, पहुँचै सागर पार।
तैसे अधिक गुनीनि सँग, गुन लहि तजहि विकार ॥७२॥
ज्यों मलयागिरिके विषै, बावन चंदन जान।
परसि पौन[3] तसु और तरु, चंदन होंहिं महान ॥ ७३ ॥
त्यों सतसगति जोगतैं, मिटै सकल अपराध।
सुगुन पाय शिवमग चलै, पावै पद निरुपाध ॥ ७४ ॥
देख कुसंगति पायके, होंहिं सुजन सविकार।
अगिनि-जोग जिमि जल गरम, चंदन होत अँगार ॥७५॥
छीर[4] जगत जन पोषिकै, करत बीजदुति[5] गात।
सोई अहिमुख परत ही, हालाहल ह्वै जात ॥ ७६ ॥
तातैं बहुत कहों कहा, जे ज्ञाता परवीन।
ते थोरेहीमें लखहिं, संग रंगकी बीन ॥ ७७ ॥
दुर्जनको उपदेश यह, निष्फल ऐसें जात।
पाथर परको मारिबो, चोखो तीर नसात ॥ ७८ ॥
तातैं निजहित हेतको, गहन करहिं बुधिधार।
हंस पान पय[6]को करत, जिमि तजि वारिविकार ॥ ७९ ॥
यों मत चितमें जानियो, मुनिकहँ यह उपदेश।
श्रावकको तो नहिं कह्यो, मूल ग्रंथमें लेश ॥ ८० ॥

---

१ विष। २ अमृत। ३ पवन-हवा। ४ दूध। ५ बिजली जैसी कान्ति। ६ दूध।

मुनिके मिष सबको कह्यो, न्याय रीति निरवाह ।
जिहि मगमें नृप पग धरै, प्रजा चलै तिहि राह ॥ ८१ ॥
ऐसो जानि हिये सदा, जिनआगम अनुकूल ।
करो आचरन हे भविक, करम जलै ज्यों तूल ॥ ८२ ॥
परम पुन्यके उदयतै, मिल्यौ सुघाट सुजोग ।
अब न चूक भवि **वृंद** यह, **नदी नाव संजोग** ॥ ८३ ॥
सकल ग्रंथको मंथके, पंथ कह्यो यह सार ।
कुंदकुंद गुरुदेव सो, मोहि करो भव पार ॥ ८४ ॥
जयवंतो वरतौ सदा, श्रीसरवज्ञ उदार ।
जिन भाष्यौ यह मुकतिमग, श्रीमत **प्रवचनसार** ॥ ८५ ॥
यह मुनि शुभ आचारको, पूर्ण भयो अधिकार ।
सो जयवंतो होहु जग, रविशशिकी उनिहार ॥ ८६ ॥
मंगलकारी जगत गुरु, शुद्ध सिद्ध अरहंत ।
सो याही मगतै किये, सकल करमको अंत ॥ ८७ ॥
तातै परम पुनीत यह, जिनशासन सुखकंद ।
वृंदावन सेवत सदा, दायक सहजानंद ॥ ८८ ॥

अथ पञ्चरत्नतत्त्वस्वरूपो लिख्यते ।

मंगलाचरण । दोहा ।

पंच परमपद वंदिकै, पंचरतनको रूप ।
गाथा अरथ विलोकिकै, लिखौं सुखद रसकूप ॥ ८९ ॥
मानो इस सिद्धांतके, एई पाचों रत्न ।
मुकुटसरूप विराजहीं, उर धरिये जुत जत्न ॥ ९० ॥
अनेकांत भगवतमत, ताको जुत संक्षेप ।
दरसावत है रतन यह, नय प्रमान निक्षेप ॥ ९१ ॥
और यही संसार थिति, मोक्षस्थिति विरतंत ।
प्रगट करत हैं तासुतैं, होहु सदा जयवंत ॥ ९२ ॥
पंचरतनको नाम अब, सुनो भविक अभिराम ।
उर सरधा दिढ धारिकै, वेगि लहो शिवधाम ॥ ९३ ॥

छप्पय ।

प्रथम तत्त्व संसार, मोक्ष दूजो पुनि जानो ।
मोक्षतत्त्वसाधक तथैव, साधन उर आनो ॥
सर्वमनोरथ सुखद,—थान शिष्यनिको वरनी ।
शास्त्रश्रवणको लाभ, दुरित भवसागर तरनी ॥
यह पंचरतन इस ग्रंथमें, सकल अर्थ मथिकै धरे ।
वृंदावन जो सरधा करै, सो भव तरि शिवतिय वरै ॥ ९४ ॥

मुनिके मिष सबको कह्यो, न्याय रीति निरबाह ।
जिहि मगमें नृप पग धरै, प्रजा चलै तिहि राह ॥८१॥
ऐसो जानि हिये सदा, जिनआगम अनुकूल ।
करो आचरन हे भविक, करम जलै ज्यों तूल ॥ ८२ ॥
परम पुन्यके उदयतै, मिल्यौ सुघाट सुजोग ।
अब न चूक भवि **वृंद** यह, **नदी नाव संजोग** ॥८३॥
सकल ग्रंथको मंथके, पंथ कह्यो यह सार ।
कुंदकुंद गुरुदेव सो, मोहि करो भव पार ॥ ८४ ॥
जयवंतो वरतौ सदा, श्रीसरवज्ञ उदार ।
जिन भाष्यौ यह मुकतिमग, श्रीमत **प्रवचनसार** ॥८५॥
यह मुनि शुभ आचारको, पूर्ण भयो अधिकार ।
सो जयवंतो होहु जग, रविशशिकी उनिहार ॥ ८६ ॥
मंगलकारी जगत गुरु, शुद्ध सिद्ध अरहंत ।
सो याही मगतै किये, सकल करमको अंत ॥ ८७ ॥
तातैं परम पुनीत यह, जिनशासन सुखकंद ।
वृंदावन सेवत सदा, दायक सहजानंद ॥ ८८ ॥

अथ पञ्चरत्नतत्त्वस्वरूपो लिख्यते ।

मगलाचरण । दोहा ।

पंच परमपद वंदिकै, पंचरतनको रूप ।
गाथा अरथ विलोकिकै, लिखौं सुखद रसकूप ॥ ८९ ॥
मानो इस सिद्धातके, एई पाचों रत्न ।
मुकुटसरूप विराजहीं, उर धरिये जुत जत्न ॥ ९० ॥
अनेकांत भगवंतमत, ताको जुत संक्षेप ।
दरसावत है रतन यह, नय प्रमान निक्षेप ॥ ९१ ॥
और यही संसार थिति, मोक्षस्थिति विरतंत ।
प्रगट करत है तासुतै, होहु सदा जयवंत ॥ ९२ ॥
पंचरतनको नाम अब, सुनो भविक अभिराम ।
उर सरधा दिढ धारिकै, वेगि लहो शिवधाम ॥ ९३ ॥

छप्पय ।

प्रथम तत्त्व **संसार**, **मोक्ष** दूजो पुनि जानो ।
मोक्षतत्त्वसाधक तथैव, **साधन** उर आनो ॥
सर्वमनोरथ सुखद,—थान शिष्यनिको वरनी ।
शास्त्रश्रवणको लाभ, तुरित भवसागर तरनी ॥
यह पंचरतन इस ग्रंथमें, सकल ग्रंथ मथिके धरे ।
वृंदावन जो सरधा करै, सो भव तरि शिवतिय वरे ॥९४॥

मुनिके मिष सबको कह्यो, न्याय रीति निरवाह ।
जिहि मगमें नृप पग धरै, प्रजा चलै तिहि राह ॥८१॥
ऐसो जानि हिये सदा, जिनआगम अनुकूल ।
करो आचरन हे भविक, करम जलै ज्यों तूल ॥ ८२ ॥
परम पुन्यके उदयतै, मिल्यौ सुघाट सुजोग ।
अब न चूक भवि **वृंद** यह, **नदी नाव संजोग** ॥८३॥
सकल ग्रंथको मंथके, पंथ कह्यो यह सार ।
कुंदकुंद गुरुदेव सो, मोहि करो भव पार ॥ ८४ ॥
जयवंतो वरतौ सदा, श्रीसरवज्ञ उदार ।
जिन भाष्यौ यह मुकतिमग, श्रीमत **प्रवचनसार** ॥८५॥
यह मुनि शुभ आचारको, पूर्ण भयो अधिकार ।
सो जयवंतो होहु जग, रविशशिकी उनिहार ॥ ८६ ॥
मंगलकारी जगत गुरु, शुद्ध सिद्ध अरहंत ।
सो याही मगतैं किये, सकल करमको अंत ॥ ८७ ॥
तातै परम पुनीत यह, जिनशासन सुखकंद ।
वृंदावन सेवत सदा, दायक सहजानंद ॥ ८८ ॥

अथ पञ्चरत्नतत्त्वस्वरूपो लिख्यते ।

मंगलाचरण । दोहा ।

पंच परमपद वंदिकै, पंचरतनको रूप ।
गाथा अरथ विलोकिकै, लिखों सुखद रसकूप ॥ ८९ ॥
मानो इस सिद्धांतके, एई पांचों रत्न ।
मुकुटसरूप विराजहीं, उर धरिये जुत जत्न ॥ ९० ॥
अनेकांत भगवंतमत, ताको जुत संक्षेप ।
दरसावत है रतन यह, नय प्रमान निक्षेप ॥ ९१ ॥
और यही संसार थिति, मोक्षस्थिति विरतंत ।
प्रगट करत है तासुतैं, होहु सदा जयवंत ॥ ९२ ॥
पंचरतनको नाम अब, सुनो भविक अभिराम ।
उर सरधा दिढ़ धारिकै, वेगि लहो शिवधाम ॥ ९३ ॥

छप्पय ।

प्रथम तत्त्व **संसार**, **मोक्ष** दूजो पुनि जानो ।
मोक्षतत्त्वसाधक तथैव, **साधन** उर आनो ॥
सर्वमनोरथ सुखद,—थान शिष्यनिको वरनी ।
शास्त्रश्रवणको लाभ, तुरित भवसागर तरनी ॥
यह पंचरतन इस ग्रंथमें, सकल ग्रंथ मथिके धरे ।
वृंदावन जो सरधा करै, सो भव तरि शिवतिय वरे ॥९४॥

(१)

छप्पय ।

जो मुनिमुद्रा धारि, अर्थ अजथारथ पकरी ।
जथा गोह गहि भूमि, तथा हारिलने लकरी ॥
जो हम निश्चय किया, सोइ है तत्त्व जथारथ ।
इमि हठसों एकांत, गहै वर्जित परमारथ ॥
सो भमै अगामीकालमें, पंचपरावर्त्तन करत ।
दुखफल अनंत भोगत सदा, कबहुँ न भवसागर तरत ॥९५॥

दोहा ।

मिथ्याबुद्धि विकारतैं, जे जन अज्ञ अतीव ।
अजथारथ ही तत्त्व गहि, हठजुत रहत सदीव ॥ ९६ ॥
जद्दिप मुनिमुद्रा धरैं, तद्दिप मुनि नहिं सोय ।
सोई संसृत तत्त्व है, इहां न संशय कोय ॥ ९७ ॥
ताको फल परिपूर्ण दुख, पंच परावृतरूप ।
भमै अनंते काल जग, यों भाषी जिनभूप ॥ ९८ ॥
और कोइ संसार नहिं, संसृत मिथ्याभाव ।
जिन जीवनिके होय सो, संसृततत्त्व कहाव ॥ ९९ ॥

(२)

अनगशेखर-दंडक ।

मिथ्या अचार टारिके जथार्थ तत्त्व धारिके, विवेक दीप वारिके स्वरूप जो निहारई । प्रशांत भाव पायके विशुद्धता बढ़ाय पुव्व,-बंध निर्जरायके अबंध रीति धारई ॥ न सो

भमै भवावली तरै सोई उतावली, सोई मुनीशको पदस्थ पूर्णता सुसारई। यही सु मोखतत्त है त्रिलोकमें महत्त है, सोई दयानिधान भव्य वृंदको उधारई ॥ १०० ॥

दोहा।

जो परदरवनि त्यागिकै, है स्वरूपमें लीन।
सोई जीवनमुक्त है, मोक्षतत्त्व परवीन ॥ १०१ ॥

(३)

मनहरण।

सम्यक प्रकार जो पदारथको जानतु है, आपा पर भेद भिन्न अनेकांत करिकै।इंद्रिनिके विषैमै न पागै औ परिग्रह,—पिशाच दोनों भाँति तिन्हें त्यागै धीर धरिकै ॥ सहज स्वरूपमें ही लीन सुखसैन मानो, करम कपाटको उघारै जोर भरिकै। ताहीको जिनिंद मुक्तसाधक बखानतु है, सोई शुद्ध साध ताहि बंदों भर्म हरिकै ॥ १०२ ॥

दोहा।

ऐसे सुपरविवेकजुत, लसै शुद्ध जे साध।
मोखतत्त्वसाधक सोई, वर्जित सकल उपाध ॥ १०३ ॥

(४)

मनहरण।

शुद्ध वीतरागता सुभावमें जु लीन शिव,—साधक श्रमन सोई मुनिपदधारी है। ताही सु विशुद्ध उपयोगीके दरश ज्ञान, भाषी है जथारथपनेसों विसतारी है ॥ फेर ताही शुद्ध

मोखमारगी मुनीशहीके, निराबाध मोखकी अवस्था अवि-
कारी है। सोई सिद्धदशामें विराजै ज्ञानानंदकंद, निरद्वंद
वृंद ताहि बंदना हमारी है ॥ १०४ ॥

दोहा ।

मोक्षतत्त्वसाधन यही, शुद्धुपयोगी साध ।
सकलमनोरथसिद्धिप्रद, शुद्ध सिद्ध निरबाध ॥ १०५ ॥

(५)

छप्पय ।

जो यह शासन भलीभाँति, जानै भवि प्रानी ।
श्रावक मुनि आचार, जासुमधि सुगुरु बखानी ॥
सो थोरे ही कालमाहिं, शुद्धातम पावै ।
द्वादशांगको सारभूत, जो तत्त्व कहावै ॥
मुनि **कुंदकुंद** जयवंत जिन, यह परमागम प्रगट किय ।
वृंदावनको भव उदधितै, दै अवलंब उधार लिय ॥ १०६ ॥
द्वादशांगश्रुतिसिंधु, मथन करि रतन निकासा ।
सुपरभेदविज्ञान, शुद्ध चारित्र प्रकासा ॥
सो इस **प्रवचनसार**माहिं, गुरु वरनन कीना ।
अध्यातमको मूल, लखहिं अनुभवी प्रवीना ॥
मुनि **कुंदकुंद**कृत मूल जु सु, **अमृतचंद** टीका करी ।
तसु **हेमराज**ने वचनिका, रची अध्यातमरसभरी ॥ १०७ ॥

मनहरण ।

दोइ सौ पछत्तर पराकृतकी गाथामाहिं, कुंदकुंदस्वामी

रची **प्रवचनसार** है। अध्यातमवानी स्यादवादकी निशानी जातै, सुपरप्रकाशबोध होत निरधार है॥ निकट-सुभव्य-हीके भावभौनमाहिं याकी, दीपशिखा जगै भगै मोह अंधकार है। मुख्य फल मोख औ अमुख्य शक्रचक्रिपद, **वृंदावन** होत अनुक्रम भव पार है॥ १०८॥

अथ कविव्यवस्था लिख्यते।

छप्पय।

अगरवाल कुल **गोल**, गोत **वृंदावन** धरमी।
धरमचंद जसु पिता, **शिताबो** माता परमी॥
तिन निजमतिमित बाल, ख्याल सम छंद बनाये।
काशीनगरमँझार, सुपरहितहेत सुभाये॥
प्रिय **उदयराज** उपगारतैं, अब रचना पूरन भई।
हीनाधिक सोधि सुधारियौ, जे सज्जन समरसमई॥ १०९॥

मनहरण।

वाराणसी आरा ताके बीच बसै **वारा** **सुरसरिके** किनारा तहां जनम हमारा है। ठारै अड़ताल माघ सेत चौदै सोम पुष्य, कन्या लग्न भानुअंश सत्ताइस धारा है॥ साठेमाहिं **काशी** आये तहां सतसंग पाये, जैनधर्ममर्म लहि भर्म भाव हारा है। सैली सुखदाई भाई **काशीनाथ** आदि जहां, अध्यातमवानीकी अखड बहै धारा है॥ ११०॥

छप्पय ।

प्रथमहिं **आढ़तराम**, दया मोपै चित लाये ।
सेठी श्री**सुखलाल**जीयसों, आनि मिलाये ॥
तिनपै श्रीजिनधर्ममर्म, हमने पहिचाने ।
पीछे **वकसूलाल** मिले, मोहि मित्र सयाने ॥
अवलोके **नाटकत्रयी** पुनि, औरहु ग्रंथ अनेक जब ।
तब कविताईपर रुचि बढी, रचो छंद भवि **वृंद** अब ॥१११॥
सम्वत विक्रमभूप, ठारसौ त्रेशठमाहीं ।
यह सब बानक बन्यौ, मिली सतसंगतिछाहीं ॥
तब श्री**प्रवचनसार**, ग्रन्थको छंद बनावों ।
यही आश उर रही, जासुतै निजनिधि पावों ॥
तब छंद रची पूरन करी, चित न रुची तब पुनि रची ।
सोऊ न रुची तब अब रची, अनेकांत रससों मची ॥११२॥

अथ ग्रन्थपरिसमाप्तिमगल ।

दोहा ।

[1]वंदों श्रीसरवज्ञ जो, निरावरन निरदोष ।
विघ्नहरन मंगलकरन, मनवांछित सुख पोष ॥ ११३ ॥
पंचपरमगुरुको नमो, उर धरि परम सनेह ।
भवदधितै भवि **वृंदको**, पार उतारत तेह ॥ ११४ ॥
जिनवानी जिनधर्मको, वंदों बारंबार ।
जिस प्रसादतै पाइये, ज्ञानानंद अपार ॥ ११५ ॥

---

१ यह दोहा छंदशतकमे भी है ।

सज्जनसों कर जोरके, करों वीनती मीत ।
भूल चूक सब सोधिकै, शुद्ध कीजियौ रीत ॥ ११६ ॥
यामें हीनाधिक निरखि, मूलग्रंथको देखि ।
शुद्ध कीजियो सुजनजन, बालबुद्धि मम पेखि ॥ ११७ ॥
यह मुनि शुभचारित्रको, पूर्ण भयो अधिकार ।
सो जयवंत रहो सदा, शशि सूरज उनिहार ॥ ११८ ॥

अथ कविवंशावली लिख्यते ।

काव्य (२४ मात्रा) ।

मार्गशीर्ष गत दोय, और पंद्रह अनुमानो ।
नारायन विच चंद्र, जानि औ सतरह जानो ॥
इसी बीच **हरिवंश, लाल** बाबा गृह जाये ।
नाम **सहारूसाह,** साहजूके कहलाये ॥ ११९ ॥
बाबा **हीरानंद**साह, **सुंदर** सुत तिनके ।
पंच पुत्र धनधर्म,–वान गुनजुत थे इनके ॥
प्रथमे **राजाराम,** बबा फिर **अभैराज** सुनु ।
उदयराज उत्तम सुभाव, आनंदमूर्ति गुनु ॥ १२० ॥
भोजराज औ **जोगराज** पुनि, कहे जानिये ।
इन पितु लग **काशी,** निवास अस सुखद मानिये ॥
अब बाबा **खुशहाल,**–चंद सुतका सुनु वरनन ।
सीताराम सु ज्ञानवान, वंदों तिन चरनन ॥ १२१ ॥

दादा हमारे **लालजीय**, कुल औगुन खंडित ।
तिन सुत मो पितु **धर्मचंद**, सब शुभजसमंडित ।
तिनको दास कहाय, नाम मो **वृंदावन** है ।
एक भ्रात औ दोय, पुत्र मोकों यह जन है ॥ १२२ ॥
महावीर है भ्रात नाम, सो छोटा जानो ।
ज्येष्ठ पुत्रको नाम, **अजित** इमि करि परमानो ॥
मगसिर सित तिथि तेरस, काशीमें तब जानो ।
विक्रमाब्द गत सतरहसै, नव विदित सु मानो ॥१२३॥
मो[1] लघु सुत है **शिखरचंद**, **सुंदर** सुत ज्येष्ठको ।
इमि परिपाटी जानिये, कह्यो नाम लघु श्रेष्ठको ॥

पद्धडी ।

संवत चौरानूमें सु आय । आरेतै **परमेष्ठीसहाय** ॥
अध्यातमरंग पगे प्रवीन । कवितामें मन निशिद्यौस लीन१२४
सज्जनता गुनगरुवे गँभीर । कुल अग्रवाल सु विशाल धीर ॥
ते मम उपगारी प्रथम पर्म । साँचे सरधानी विगत भर्म१२५
भैरवप्रसाद कुल अग्रवाल । जैनी जाती बुधि है विशाल ॥
सोऊ मोपै उपकार कीन । लखि भूल चूक सो शोध दीन१२६

छप्पय ।

सीताराम पुनीत तात, जसु मात **हुलासो** ।
ज्ञात **लमेचू** जैनधर्म, कुल विदित प्रकासो ॥

---

१ इन दो तुकोंमें दो २ मात्रायें अधिक हैं । और यह छन्द दोनों ही प्रतियोंमें आधा है ।

तसु कुलकमलदिनिंद, भ्रात मम उदयराज वर ।
अध्यातमरस छके, भक्त जिनवरके दिढतर ॥
ते उपगारी हमको मिले, जब रचनामें भावसों ।
तब पूरन भयो गिरंथ यह, वृंदावनके चावसों ॥ १२७ ॥

दोहा ।

चार अधिक उनईससौ, संवत विक्रम भूप ।
जेठ महीनेमें कियो, पुनि आरंभ अनूप ॥ १२८ ॥
पांच अधिक उनईससौ, धवल तीज वैशाख ।
यह रचना पूरन भई, पूजी मन अभिलाख ॥ १२९ ॥

इति श्रीमत्कुन्दकुन्दाचार्यकृत परमागम श्रीप्रवचनसारजी मूल गाथा ताकी सस्कृतटीका श्रीअमृतचन्द्राचार्यने करी ताकी देशभाषा पाडे हेमराजजीने रची है, ताहीके अनुसारसों वृंदावन अग्रवाल गोइलगोतीने भाषा छद रची तहा यह मुनिशुभचारित्राधिकार समाप्त ।

सर्वगाथा २७५ दोयसौ पचहत्तर भाषाके छद सर्व १०९४ एक हजार चौरानवे भये सो जयवत होहु । श्रीरस्तु मगलमस्तु–स १९०५— सर्व भाषाके छद ११६२ अकेय ग्यारहसै वासठ भये—

(इह मूल ग्रन्थकर्त्ताके हाथकी प्रथम प्रति लिखी है सो सदा जयवंत प्रवर्तो)
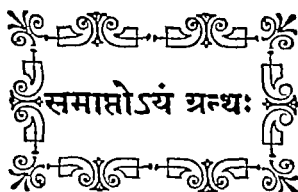
संशोधनपत्र ।

प्रथम अधिकार—पृष्ठ १ में मगलाचरणके जो छह पद्य हैं— वचनिकाके कर्ता पडित हेमराजजीके हैं । परन्तु उनकी सख्या लगाई गई है ।

चौथा अधिकार—इस अध्यायके प्रारभके दोहेकी सख्या शामिल नहीं की गई है । इस लिये अन्तमें छन्दोंकी संख्या १२४ हुई है, उसे १२५ समझना चाहिये ।

छठा अधिकार—पृष्ठ १३६ के माधवी छन्दपर (८) का नम्बर रहना चाहिये और दूसरे पृष्ठ १३८ के मत्तगयन्द छन्दपर (१३) का नम्बर होना चाहिये । इनके सुधारलेनेसे अधिकारके अन्तकी गाथाका नम्बर (५४) के स्थानमें (५६) हो जावेगा ।

सातवां अधिकार—प्रारंभके हैडिंगमें सप्तमोश्चारित्राधिकारः के स्थानमे सप्तमश्चारित्राधिकारः पढ़ना चाहिये । पृष्ठ १७३ में 'भावलिंग' शीर्षकपर गाथाका नम्बर नहीं है, सो (५) होना चाहिये । पृष्ठ १७४ में (५) के स्थान मे (६) पृष्ठ १७५ में (६) के स्थानमे (७–८) १७६ में (७) के स्थानमें (९) और (८) के स्थानमें (१०–११) कर लेना चाहिये ।

ग्रन्थान्त—में सम्पूर्ण गाथाओंकी सख्या २७५ लिखी है, परन्तु उसमें एककी भूल है । हिसाबसे २७४ ही होते हैं । हेमराजजीकी वचनिकोंमें भी २७४ ही गाथा हैं । इसी प्रकार छन्दोंकी संख्याका जोड़ जो ११६२ बतलाया है, उसमें भी १३ का फर्क है । हिसाब से ११७५ होना चाहिये । करहलकी प्रतिमें अन्तके अध्यायमें १० नम्बरोंकी भूल रह गई है, और अन्तके ३ श्लोकोंपर नम्बर नहीं हैं, कुल ११७५ में पीठिकाके ६८ छन्द अलग करनेसे ११०७ छन्द रहते हैं, जो १०९४ से १३ अधिक हैं । किसी २ अध्यायके अन्तमें दी हुई गाथासंख्या तथा छन्दसख्याका जोड़ भी बराबर नहीं मिलता है, परन्तु वह अन्तमें सब बराबर हो जाता है ।